

# विक्रीस तयार.

निर्णयमागर छापखान्यांतील पुस्तके.

## संस्कृत.

किं. ट. ख.		किं. ट. ख.
अध्यात्मरामायण (रे. पु.) .॥१॥	०॥	अंथ)-वारभट्कृत, अ-
अनुभूतिप्रकाश-विद्यार-		रुणदत्तकृत सर्वांगसुं-
प्रयस्वामिकृत ... २। ०॥		दरा टीकेसहित ... ८ .॥१॥
अभिज्ञानशार्कुतल ना-		अष्टाध्यायीसूत्रपाठ-पा-
टक-कालिदासकृत,-		णिनिकृत ... . . . . १॥ १॥
राघवभट्कृत अर्थस्तो-		आदित्यहृदय व सूर्यक-
तनिका टीकेसहित १। ०॥		वच ... . . . . १॥ १॥
,, (इंग्रजी टीपांस-		आपसंबीय देवे ... . . . १॥ १॥
हित) ... . . . २। ०॥		आशौचनिर्णय-ऋण्डककृत १॥ १॥
अभिधानसंग्रह-प्रथम		ईसवीनितिकथा प्रथम
भाग. यांत अमरसि-		भाग (कथा १-६०) .॥ १॥ १॥
हकृत नामलिंगानु-		,, द्वितीय भाग
शासन, पुरुषोत्तमदे-		(कथा ६१-१२०) .॥ १॥ १॥
वकृत त्रिकांडशेष,		उदासीनसाधुस्तोत्र-देव-
हारावली, एकाक्षर-		तीर्थकृत, ब्रह्मानंद-
कोश, व द्विरूपकोश		कृत टीकेसहित ... . . . १॥ १॥
झटके कोश आले आ-		ऋग्वेदी नित्यविधि ... . . . १॥ १॥
हेत ... . . . १। ०॥		ऋग्वेदी देवे ... . . . १॥ १॥ १॥
अमरकोशमूल-शब्द-		ऋग्मोचनमंगलस्तोत्र ... १॥ १॥
कोशसहित ... . . . १॥ ०॥		ऋतुसंहार काव्य-कालि-
अमरकोश सटीक-शब्द-		दासकृत, मणिराम-
कोशसहित... . . . . १॥ ०॥		कृत टीकेसहित ... . . . १॥ १॥
अभिनवकादंबरी काव्य-		,, इंग्रजी टीपांसहित
धुंडिराजकृत ... ०॥ १॥		आणि शृङ्गारतिलक-
अमरकोश-अमरसिंह-		काव्य कालिदासकृत .॥ १॥ १॥
कृत, भानुजी दीक्षि-		कथासरित्सागर-सोमदे-
तकृत व्याख्यासुधा		वभट्कृत ... . . . . ६ .॥१॥
किंवा रामाश्रमी टीके-		कादंबरी-बाणभट्कृत,
सहित ... . . . ५। ०॥		भानुचंद्र व सिद्धचंद्र
अवधूतगीता (साधी.) १॥		यांच्चा टीकांसहित ... ५ .॥१॥
,, (रे. पु.) .॥ १॥		किरातार्जुनीय काव्य-
अष्टांगहृदय (वैद्यक		भारविकृत, महिना-

किं. ट. ख.		किं. ट. ख.
थकृत घण्टापथ टीके-		यांसहित ... ... १॥ ८॥
सहित ... ... २	१॥	तुलसीमाहात्म्य ... ८॥ ८॥
कुमारसंभव काठ्य-का-		त्रिकालसंध्या हिरण्यके-
लिदासकृत, मङ्गिना-		शीया (आपसंबी) ८॥ ८॥
थकृत (१-८ सर्ग) व		“ , ऋग्वेदीया ८॥ ८॥
सीतारामकृत (८-१७		दत्तत्रैयसहस्रनामावलि ८॥ ८॥
सर्ग) संजीविनी टीके-		दत्तत्रैयस्तोत्र ... ... ८॥ ८॥
सहित ... ... २	१॥	दमयंतीकथा (नलचंपू)-
कुवलयानंदकारिका-आ-		त्रिविक्रमभद्रकृत, च-
शाधरकृत, स्वकृत अ-		षडपालकृत विषमप-
लंकारदीपिका टीकेस-		दप्रकाश टीकेसहित... २
हित ... ... ... १॥ १॥	१॥	दशकुमारचरित-दण्ड-
कृष्णसहस्रनाम... ८॥	८॥	कृत, पूर्वपीठिका, उ-
गंगालहरीमूळ.... ८॥ ८॥	८॥	त्तरपीठिका, कवीन्द्र-
गणपतिस्तोत्र ... ... ८॥	८॥	सरस्वतीकृत पदच-
गणेशाटक ... ... ८॥	८॥	दिन्दिका टीका, शिवरा-
गणेशगीता (साधी) ८॥	८॥	मकृत भूषणा टीका,
,, (रे. पु.)... ... १॥	१॥	लघुदीपिका टीका (द-
गणेशसहस्रनामावलि ८॥	८॥	शकुमारचरितावर) व
गोपालसहस्रनाम, गो-		पदचन्द्रिका टीका (पू-
पालकवच व गोपाल-		र्वपीठिकेवर) यांस-
स्तवराज यांसहित ८॥	८॥	हित ... ... १॥ ८॥
,, (रेशमी उडा) १॥	१॥	दुर्गास्तोत्र-नारायणभट
चतुःश्लोकी भागवत ८॥	८॥	पर्वणीकरकृत ... ८॥ ८॥
जैनस्तोत्रसंग्रह (यांत भ-		देवीसहस्रनामावलि ८॥ ८॥
क्तामरस्तोत्र, कल्याण-		द्वादशस्तोत्र-भगवत्पादा-
मंदिरस्तोत्र, एकीभा-		चार्यकृत ... ... ८॥ ८॥
वस्तोत्र, विषापहार-		धातुरूपावलि... ... ८॥ ८॥
स्तोत्र व जिनचतुर्थि-		श्रीहर्षविरचित नैषधीय-
शतिका इतकीं स्तोत्रें		चरित-नैषधीयप्रका-
आहेत.) ... ... १॥	१॥	शाल्य (नारायणी)
ज्योतिर्लिंगस्तोत्र व शि-		टीकेसहित ... ... ६
वमानसपूजा... ८॥	८॥	१॥
सर्ककौमुदी-लौगाक्षिभा-		नर्मदाष्टकस्तोत्र-शंकरा-
स्तकृत ... ... ८॥	८॥	चार्यकृत ... ... ८॥ ८॥
तर्कसंग्रह-अर्जुभद्रकृत,		नारदभक्तिसूत्रे ... ८॥ ८॥
स्वकृत दीपिका टीका,		नीतिशतक-भर्तृहरिकृत,
व हङ्गजी भापांतर		कृष्णशास्त्री महाबल-
		कृत टीकेसहित ... १॥ ८॥

किं. ट. ख.

नीति-शङ्कर-वैराग्य-श-	
तके-भट्टेहरिकृत, कृ-	
णशास्त्री महाबल-	
कृत टीकेसहित ... ॥॥॥	८
पंचरत्नी गीता (यांत भ-	
गवद्वीता, विष्णुसह-	
स्तनाम, भीष्मसत्व-	
राज, अनुस्मृति व	
गजेन्द्रमोक्ष हृतकी प्र-	
करणे आहेत.) (रे. पु.)	
(स्थूलाक्षर) ... १	८३
” ” (मध्यमाक्षर) ... १	८१
” ” (सूक्ष्माक्षर) ... १॥	८१
” ” (साधी) ... ... १	८१
पंचायतन देवाची पृथक्	
पृथक् अष्टोत्तरशत	
नामावलि. ... ... ८	८॥
पांडवगीता ... ... ८	८॥
पार्वतीपरिणय नाटक-	
बाणकृत ... ... १.	८॥
प्रभोत्तरपर्योनिधि-बल-	
रामदासमुनिकृत ... १.	८॥
प्रसन्नराघव नाटक-जय-	
देवकृत ... ... ॥॥॥	८
प्रातःस्नान ... ... ८	८॥
पुरुषोत्तम सहस्रनाम ... ८	८॥
बृहत्सोत्ररत्नाकरः (सचिन्न)	
कापडी ... ... ॥॥	८
” (कागडी) ... १	८
ब्रह्मनामावलि-शंकराचा-	
र्यकृत ... ... ... १ ८॥	
श्रीमद्भागवत मूल (रे-	
शमी गुटका) ... ॥॥॥ ८३॥	
भगवद्वीता (रेशमी पुष्टा	
स्थूलाक्षर) ... ... ॥॥ ८३॥	
” (मध्यमाक्षरे. पु.) ... १= ८॥	
” ” (सूक्ष्माक्षर) ... १॥ ८॥	
साधी (मध्यमाक्षर) ... ८३ ८॥	

किं. ट. ख.
” उक्साईज (म. अ.) ८३ ८॥
” शंकरानंदसरस्वती-
कृत गीतातात्पर्यचो-
धिनी टीकेसहित ... ५ १३
भट्टिकाव्य-भट्टिकृत, ज-
यमङ्गलकृत जयमङ्ग-
ला टीकेसहित ... ३ १.
भट्टिकाव्याचा १४ वा व
१५ वा सर्ग इंग्रजी
टीपांसहित प्रत्येक स-
र्गास ... ... ... १. ८॥
पंडितराज जगन्नाथ वि-
रचित भास्मिनीविला-
स काव्य अच्युतराव
मोडककृत प्रणयप्र-
काश टीकेसहित. ... १ ८
मनुस्मृति-कुलुक्मटकृत
मन्वर्थमुक्तावलि टीके-
सहित... ... ... २ १.
महालक्ष्म्यष्टक ... ... १ ८॥
महावीरचरितनाटक-भ-
वभूतिकृत, वीरराघव-
कृत टीकेसहित ... १॥ ८
मालतीमाधव नाटक-भ-
वभूतिकृत, त्रिपुरारि-
कृत टीका, नाच्यदेव-
कृत टीका व जगद्वर-
कृत टीका यांसहित २ ८॥
मालविकाग्निमित्र ना-
टक-कालिदासकृत, का-
ट्यवेमकृत टीकेसहित १. ८
मालविकाग्निमित्र ना-
टक-इंग्रजी टीपांस-
हित ... ... ... १॥ ८
विशाखदत्तविरचित मु-
द्राराक्षस नाटक, धुं-
डिराजकृत टीकेसहित १॥॥ १.
मेघदूत काव्य-कालिदा-

THE  
DAS'ARÛPAKA  
OF  
DHANANJAYA

WITH  
The Commentary of Dhanika.

EDITED BY  
KÂSHINÂTH PÂNDURANG PARAB.

PRINTED AND PUBLISHED

BY  
TUKÂRÂM JÂVAJÎ,  
PROPRIETOR OF JÂVAJÎ DÂDÂJÎ'S "NIRNAYA-SÂGAR" PRESS,

Bombay:

1897.

Price 12 Annas.

(Registered according to act XXV of 1865.)

(All rights reserved by the publisher.)

॥ श्रीः ॥

श्रीधनंजयविरचितं

दशरूपकम् ।

धनिककृतयावलोकाख्यया व्याख्यया समेतम् ।

काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब  
इत्यनेन संस्कृतम् ।

तत्र

शाके १८१९ वत्सरे

मुम्बद्यां

निर्णयसागरयच्चालयाधिपतिना स्वकीये मुद्रायन्ते  
मुद्राणयित्वा प्राकाश्यं नीतम् ।

मूल्यं १२ आणकाः ।



# दशरूपकविषयानुक्रमणिका

	प्रकाशः ।	स्लोकः ।	पृष्ठे ।
<b>प्रथमः प्रकाशः ।</b>			
मङ्गलाचरणम्....	....	....	१ १-२
श्रोतृप्रवृत्तिनिमित्तम्	....	....	२ २
ग्रन्थकर्तृप्रवृत्तिनिमित्तम्	....	....	३ ३
पौनस्कत्यपरिहारः	....	....	४ ४
दशरूपकफलम्	....	....	५ ५
नाट्यलक्षणम्....	....	....	६ ६
रूपलक्षणम् ....	....	....	७ ७
रूपकलक्षणम्....	....	....	८ ८
भेदसंस्त्यानियमनम्	....	....	९ ९
दशभेदनामकथनम्	....	....	१० १०
नृत्यलक्षणम् ....	....	....	११ ११
नृत्तलक्षणम् ....	....	....	१२ १२
नृत्यनृत्योद्वैविध्यम्	....	....	१३ १३
रूपाणां भेदकनिरूपणम्....	....	....	१४ १४
वस्तुनो द्वैविध्यम्	....	....	१५ १५
आधिकारिकनिरूपणम्....	....	....	१६ १६
प्रासङ्गिकनिरूपणम्....	....	....	१७ १७
प्रासङ्गिकस्य द्वैविध्यम्	....	....	१८ १८
पताकास्थानकम्	....	....	१९ १९
आधिकारिकपताकाप्रकरीणां त्रिविभव्यम्..	....	....	२० २०
इतिवृत्तफलम्....	....	....	२१ २१
इतिवृत्तसाधनम्	....	....	२२ २२
अवान्तरबीजसंज्ञानतरम्	....	....	२३ २३
प्रयोजनसिद्धिहेतवः	....	....	२४ २४

		प्रकाशो	स्थोकः ।	पृष्ठे ।
अवस्थापञ्चकम्	....	१	१९	६
आरम्भलक्षणम्	....	१	२०	६
प्रयत्नलक्षणम् ....	....	१	२०	६
प्रास्याशालक्षणम्	....	१	२१	७
नियतासिलक्षणम्	....	१	२१	७
फलयोगलक्षणम्	....	१	२२	७
संधिलक्षणम् ....	....	१	२३	७
संधिभेदनामानि	....	१	२४	७
मुखलक्षणम् ....	....	१	२४	८
मुखभेदकथनम्	....	१	२५	८
मुखभेदनामानि	....	१	२५-२६	८
उपक्षेपलक्षणम्	....	१	२७	८
परिकरलक्षणम्	....	१	२७	८
परिन्यासलक्षणम्	....	१	२७	८
विलोभनलक्षणम्	....	१	२७	९
युक्तिलक्षणम् ....	....	१	२८	९
प्रासिलक्षणम् ....	....	१	२८	९
समाधानलक्षणम्	....	१	२८	१०
विधानलक्षणम्	....	१	२८	१०
परिभावनालक्षणम्	....	१	२९	११
उद्देशलक्षणम्....	....	१	२९	१२
करणलक्षणम् ....	....	१	२९	१२
भेदलक्षणम् ....	....	१	२९	१३
प्रतिमुखलक्षणम्	....	१	३०	१३
प्रतिमुखाङ्गसंस्थाकथनम्	....	१	३०	१३
प्रतिमुखाङ्गनामानि	....	१	३१	१४
विलासलक्षणम्	....	१	३२	१४
परिसर्पलक्षणम्	....	१	३२-३३	१४

		प्रकाशे	स्थोकः ।	पृष्ठे ।
विधूतलक्षणम्....	....	१	३३	१९
शमलक्षणम् ....	....	१	३३	१९
नर्मलक्षणम् ....	....	१	३३	१६
नर्मद्युतिलक्षणम्	....	१	३३	१६
प्रगमनलक्षणम्	....	१	३४	१७
निरोधलक्षणम्	....	१	३४	१७
पर्युगासनलक्षणम्	....	१	३४	१७
पुष्पलक्षणम् ....	....	१	३४	१७
उपन्यासलक्षणम्	....	१	३५	१८
वज्रलक्षणम् ....	....	१	३५	१८
पर्महार रःणम्	....	१	३६	१८
गर्भसंधिलक्षणम्	....	१	३६	१९
गर्भसंध्यङ्गनामानि	....	१	३७	१९
अभूताहरणलक्षणम्	....	१	३८	१९
मार्गलक्षणम् ....	....	१	३८	२०
रूपलक्षणम् ....	....	१	३९	२०
उदाहरणलक्षणम्	....	१	३९	२०
क्रमलक्षणम् ....	....	१	३९	२१
संग्रहलक्षणम् ....	....	१	४०	२१
अनुमानलक्षणम्	....	१	४०	२२
अधिबललक्षणम्	....	१	४०	२२
तोटकलक्षणम्	....	१	४०	२२
तोटकलक्षणान्तरे	....	१	४१	२३
उद्वेगलक्षणम् ....	....	१	४२	२३
संभ्रमलक्षणम् ....	....	१	४२	२४
आक्षेपलक्षणम्....	....	१	४२	२४
अवमर्शलक्षणम्	....	१	४३	२५
अवमर्शाङ्गनामानि	....	१	४४	२६

			प्रकाशो	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
अपवादलक्षणम्	....	....	१	४९	२९
सेफललक्षणम्	....	....	१	४९	२६
विद्रवलक्षणम्	....	....	१	४३	२६
द्रवलक्षणम्	....	....	१	४९	२७
शक्तिलक्षणम्	....	....	१	४६	२८
चुतिलक्षणम्	....	....	१	४६	२८
प्रसङ्गलक्षणम्	....	....	१	४६	२८
छलनलक्षणम्	....	....	१	४६	२९
व्यवसायलक्षणम्	....	....	१	४७	२९
विरोधनलक्षणम्	....	....	१	४७	३०
प्रोत्तेचनालक्षणम्	....	....	१	४७	३१
विचलनलक्षणम्	....	....	१	४८	३१
आदानलक्षणम्	....	....	१	४८	३२
निर्वहणसंघिलक्षणम्	....	....	१	४८	३२
निर्वहणाङ्गनामानि	....	....	१	४९-५०	३३
संधिलक्षणम्	...	....	१	५१	३३
विवोधलक्षणम्	....	....	१	५१	३३
अथनलक्षणम्	....	....	१	५१	३४
निर्णयलक्षणम्	....	....	१	५१	३४
परिभाषणलक्षणम्	....	....	१	५२	३५
प्रसादलक्षणम्	....	....	१	५२	३६
आनन्दलक्षणम्	....	....	१	५२	३६
समयलक्षणम्	....	....	१	५२	३६
कृतिलक्षणम्	....	....	१	५३	३६
भाषणलक्षणम्	....	....	१	५३	३६
पूर्वभावलक्षणम्	....	....	१	५३	३७
उपगूहनलक्षणम्	....	....	१	५३	३७
काव्यसंहारलक्षणम्	....	....	१	५४	३७

	प्रकाशो ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
प्रशस्तिलक्षणम्	....	....	१
अङ्गप्रयोजनभेदकथनम्	....	....	१
षट्प्रयोजननामानि	....	....	१
पुनर्वस्तुविभागकथनम्	....	....	१
सूच्यलक्षणम् ....	....	....	१
दृश्यश्रव्यलक्षणम्	....	....	१
सूच्यप्रतिपादनप्रकारकथनम्	....	....	१
विष्कम्भलक्षणम्	....	....	१
विष्कम्भद्वैविध्यम्	....	....	१
प्रवेशकलक्षणम्	....	....	१
चूलिकालक्षणम्	....	....	१
अङ्गास्यलक्षणम्	....	....	१
अङ्गावतारलक्षणम्	....	....	१
पुनर्वस्तुत्रैविध्यकथनम्	....	....	१
सर्वश्राव्यलक्षणम्	....	....	१
स्वगतलक्षणम् ....	....	....	१
नियतश्राव्यभेदकथनम्	....	....	१
जनान्तिकलक्षणम्	....	....	१
अपवारितलक्षणम्	....	....	१
आकाशभाषितलक्षणम्	....	....	१
वस्तुभेदोपसंहारकथनम्	....	....	१
द्वितीयः प्रकाशः ।			
नायकभेदकथनम्	....	....	२
विनीतः	....	....	२
मधुरः	....	....	२
त्यागी	....	....	२
दक्षः	....	....	२
प्रियंवदः	....	....	२

	प्रकाशः ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
रक्तलोकः ....	२	२	४४
वाञ्छी(गमी) ....	२	२	४४
रुद्रवंशः ....	२	२	४४
स्थिरः ....	२	२	४४
युवा ....	२	२	४४
नेतृविशेषकथनम्	२	३	४५
ललितः ....	२	३	४५
शान्तः ....	२	४	४५
धीरोदात्तः ....	२	५	४५
धीरोद्धतः ....	२	६	४७
शुद्धारनायकभेदाः	२	६	४८
दक्षिणः ....	२	७	४८
शठः ....	२	७	४८
धृष्टः ....	२	७	४९
अनुकूलः ....	२	८	४९
सहायाः ....	२	९	५०
प्रतिनायकः ....	२	९	५०
सात्त्विका नायकगुणाः	२	१०	५०
नीचे वृणा	२	११	५१
गुणाधिके स्पर्धा	२	११	५१
शौर्यशोभा ....	२	१२	५१
दक्षशोभा ....	२	११	५१
विलासः ....	२	११	५१
माधुर्यम्	२	१२	५१
गाम्भीर्यम्	२	१२	५२
स्थैर्यम्	२	१३	५२
तेजः ....	२	१३	५२
ललितम्	२	१४	५२

			प्रकाश ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
औदार्यम्	....	....	२	१४	१२
नायिकाभेदाः	....	....	२	१९	१३
स्त्रीयालक्षणभेदाः	....	....	२	१९	१३
श्रीलवती	....	....	२	१९	१३
आर्जनवादियोगिनी	....	....	२	१९	१३
लज्जावती	....	....	२	१९	१३
मुग्धा	....	....	२	१६	१४
वयोमुग्धा	....	....	२	१६	१४
काममुग्धा	....	....	२	१६	१४
रत्नवामा	....	....	२	१६	१४
कोपमृदुः	....	....	२	१६	१४
मध्या	....	....	२	१६	१५
यौवनवती	....	....	२	१६	१५
कामवती	....	....	२	१६	१५
मध्यासंभोगः	....	....	२	१६	१५
मध्यामानवृत्तिः	....	....	२	१७	१५
धीरामध्यामानवृत्तिः	....	....	२	१७	१५
धीराधीरामध्यामानवृत्तिः	....	....	२	१७	१६
अधीरामध्यामानवृत्तिः	....	....	२	१७	१६
प्रगल्भा	....	....	२	१८	१५
गाढ्यौवना	....	....	२	१८	१५
भावप्रगल्भा	....	....	२	१८	१५
रत्नप्रगल्भा	....	....	२	१८	१५
प्रगल्भाकोपचेष्टा	....	....	२	१९	१७
सावहित्थादरा	....	....	२	१९	१७
रतावुद्ग्रामीना	....	....	२	१९	१७
अधीरप्रगल्भा	....	....	२	१९	१७
धीराधीरप्रगल्भा	....	....	२	१९	१८

		प्रकाशे	स्लोकः ।	पृष्ठे ।
मध्याप्रगल्भयोद्विदशविधत्वम्	....	२	२०	९८
परकीया	....	२	२०	९८
साधारणत्वी	....	२	२१	९९
साधारणत्वीव्यवहारः	....	२	२२	९९
अस्या निबन्धनियमः	....	२	२३	९९
नायिकाभेदान्तराणि	....	२	२३	९९
स्वाधीनपतिका	....	२	२४	१००
वासकसज्जा	....	२	२४	१००
विरहोत्कण्ठिता	....	२	२५	१०१
खण्डिता	....	२	२५	१०१
कलहान्तरिता	....	२	२६	१०१
विप्रलब्धा	....	२	२७	१०१
प्रोवितभर्तृका	....	२	२७	१०१
अभिसारिका	....	२	२७	१०१
खण्डितादीनां चिन्तादियुक्तत्वम्	....	२	२८	१०२
स्वाधीनपतिका-वासकसज्जयोर्वीडादियुक्तत्वम्		२	२८	१०२
नायिकासहायिन्यः	....	२	२९	१०२
योषिदलंकाराः	....	२	३०	१०३
शरीरजालंकाराः	....	२	३१	१०३
सप्त भावा अयत्नाः	....	२	३२	१०४
दश भावाः स्वभावजाः	....	२	३४	१०४
हावः	....	२	३४	१०५
हेला	....	२	३५	१०५
शोभा	....	२	३५	१०५
कान्तिः	....	२	३६	१०६
माधुर्यम्	....	२	३६	१०६
दीसिः	....	२	३६	१०६
प्रागस्यम्	....	२	३६	१०६

प्रकाशोऽस्मिन् । शोकः । पृष्ठ ।

आदीर्यम्	....	....	....	३	३६	६६
धैर्यम्	....	....	....	३	३७	६७
लीला	....	....	....	३	३७	६७
विलासः	....	....	....	३	३८	६८
विच्छित्तिः	....	....	....	३	३८	६८
विव्रमः	....	....	....	३	३९	६८
किलकिञ्चित्तम्	....	....	....	३	४०	६८
मोहृश्यितम्	....	....	....	३	४०	६९
कुदृष्टमितम्	....	....	....	३	४१	६९
विव्योकः	....	....	....	३	४१	६९
ललितम्	....	....	....	३	४२	७०
विहृतम्	....	....	....	३	४२	७०
नायकसहायाः	....	....	....	३	४३	७०
सहायविभागः	....	....	....	३	४३	७०
धर्मसहायाः	....	....	....	३	४४	७०
दण्डमहायाः	....	....	....	३	४४	७१
अन्तःपुरमहायाः	....	....	....	३	४५	७१
नायकादीनां विशेषः	....	....	....	३	४७	७१
नायकव्यापारः	....	....	....	३	४८-५०	७१-७२
नर्माणादशभेदाः	....	....	....	३	५०	७२
वचोहास्यनर्म	....	....	....	३	५०	७२
वेषनर्म	....	....	....	३	५०	७२
क्रियानर्म	....	....	....	३	५०	७२
गृज्जारवदात्मोपक्षेपनर्म	....	....	....	३	५०	७२
संभोगनर्म	....	....	....	३	५०	७२
माननर्म	....	....	....	३	५०	७२-७३
भयनर्म	....	....	....	३	५१	७२
नर्मस्किञ्चः	....	....	....	३	५१	७२

	प्रकाशः।	श्लोकः।	पृष्ठे।
नर्मस्फोटः ....	२	९१	७३
नर्मगमः ....	२	९२	७३
सात्त्वती ....	२	९३	७४
सात्त्वत्यज्ञानि....	२	९३	७४
संलापकः ....	२	९४	७४
उत्थापकः ....	२	९४	७४
साङ्घात्यः ....	२	९९	७४
परिवर्तकः ....	२	९९	७९
आरभटीलक्षणम्	२	९६	७९
आरभव्यज्ञानि	२	९६	७९
संक्षिसिका ....	२	९७	७९
संफेटः ....	२	९८	७९
वस्तुत्थापनम्....	२	९९	७९
अवपातः ....	२	९९	७९
वृत्त्युपसंहारः ....	२	६०-६१	७६
वृत्तिनियमः ....	२	६२-६४	७७
संस्कृतादिपाठ्यं प्रति विशेषः	२	६४	७७
आमच्छ्रणप्रकारः ....	२	६७	७७
तृतीयः प्रकाशः।			
नाटकस्यैव पूर्वोक्तौ हेतुः ....	३	१	७९
नटस्य पूर्वकर्तव्यता	३	२	७९
सूचननियमः ....	३	३	७९
रङ्गं प्रसाद्य भारतीवृत्त्याश्रयणम्.	३	४	८०
भारतीभेदनामानि	३	५	८०
प्ररोचना ....	३	६	८०
वीथ्यज्ञानि ....	३	७	८१
कथोद्धातः ....	३	९	८१
प्रवृत्तकम् ....	३	१०	८१

			प्रकाशे।	श्लोक: ।	पृष्ठे ।
प्रयोगातिशयः	....	....	३	११	८२
वीर्यज्ञनामानि	....	....	३	१२	८२
उद्घात्यलक्षणभेदाः	....	....	३	१३	८२
अवलगितम्	....	....	३	१४	८३
प्रपञ्चः	....	....	३	१५	८३
त्रिगतम्	....	....	३	१६	८३
छलनम्	....	....	३	१७	८४
वाकेली	....	....	३	१७	८४
अधिवलम्	....	....	३	१८	८४
गण्डः	....	....	३	१९	८५
अवस्थनिदितम्	....	....	३	१९	८५
नालिका	....	....	३	१९	८५
असत्प्रलापः	....	....	३	२०	८६
व्याहारः	....	....	३	२०	८६
मृद्वम्	....	....	३	२१	८७
प्रस्तावनोत्तरं सूत्रधारव्यापारः	....	....	३	२२	८७
नायकविशेषे विधेयविशेषः	....	....	३	२३	८७
नायकरसानुचितं त्याज्यम्	....	....	३	२४	८८
संधिविभागकरणम्	....	....	३	२५	८८
अङ्गसंख्यान्यासौ	....	....	३	२६	८८
विष्कम्भकादिकरणम्	....	....	३	२८	८८
विष्कम्भकनियमाः	....	....	३	२९	८८
अङ्गरचनानियमाः	....	....	३	३०	८८
अङ्गलक्षणम्	....	....	३	३०	८९
अङ्गिप्रिपोषणप्रकारः	....	....	३	३१	८९
वस्तुविच्छेदनिषेधः	....	....	३	३२	८९
रसतिरोधानिषेधः	....	....	३	३३	८९
मुख्यतया वीरशङ्कारान्यतररसाश्रयणम्			३	३३	८९

		प्रकाशे।	शोकः।	प्रष्ठे।
अन्यरसानामङ्गतैव	....	३	३४	८९
प्रत्यक्षमनिर्देश्यानि	....	३	३५	८९
नायकवधसूचननिषेधः	....	३	३६	८९
आवश्यकं न त्याज्यम्	....	३	३७	८९
अङ्के पात्रसंख्या	....	३	३७	८९
अङ्कान्ते पात्रनिर्गमः	....	३	३८	८९
अङ्करचनप्रकारः	....	३	३९	९०
नाटकेऽङ्कसंख्या	....	३	३८	९०
प्रकरणे विषयाः	....	३	३९	९०
प्रकरणे वर्णनीयनायिका	....	३	४१	९०
नाटिकाविषयनिर्णयः	....	३	४२	९०
नाटिकायां विशेषः	....	३	४३	९१
नाटिकायां प्राप्यनायिका	....	३	४६	९१
नाटिकायां नायकः	....	३	४७	९२
नाटिकायां वृत्तिनियमः	....	३	४८	९२
भाणविषयाः	....	३	४३	९२
लास्याङ्गानि	....	३	५२	९२
प्रहसनभेदनामानि	....	३	५४	९२
शुद्धप्रहसनम् ....	....	३	५५	९३
विकृतसंकीर्णप्रहसने	....	३	५६-५७	९३
प्रहसने हास्यरसः	....	३	५६	९३
डिमे विषयनियमाः	....	३	५७	९३
व्यायोगे विषयनियमाः	....	३	६०	९४
समवकारे विषयनियमाः	....	३	६२	९४
वीथ्यां विषयनियमाः	....	३	६४	९५
अङ्के विषयनियमाः	....	३	७०	९५
ईहामृगे विषयनियमाः	....	३	७२	९५

	प्रकाशः ।	श्लोकः ।	पृष्ठे ।
<b>चतुर्थः प्रकाशः ।</b>			
रसनिरूपणम्....	....	....	८
विभावलक्षणभेदौ	....	....	२
आलम्बनविभावः	....	....	२
उद्दीपनविभावः	....	....	२
अनुभावः	....	....	३
भावः	....	....	४
सात्त्विकभावलक्षणम्	....	....	४
स्तम्भादिसात्त्विकभावानां नामलक्षणे	....	४	९-६
व्यभिचारिभावलक्षणम्	....	....	७
व्यभिचारिभावनामानि	....	....	८
निर्विदः	....	....	९
ग्लानिः	....	....	१०
शङ्का	....	....	११
श्रव्णः	....	....	१२
श्रृतिः	....	....	१२
जडता	....	....	१३
हृषीः	....	....	१४
दैन्यम्	....	....	१४
औद्यम्	....	....	१५
चिन्ता	....	....	१५
त्रासः	....	....	१६
असूया	....	....	१७
अमर्पः	....	....	१८
गर्वः	....	....	१९
स्मृतिः	....	....	२०
मरणम्	....	....	२१
मदः	....	....	२१

				प्रकाशे।	स्कोर:।	पृष्ठे।
सुप्तम्	....	....	....	४	२२	१०७
निद्रा	....	....	....	४	२३	१०७
विवोधः	....	....	....	४	२४	१०८
त्रीडा	....	....	....	४	२४	१०८
अपस्मारः	....	....	....	४	२९	१०८
मोहः	....	....	....	४	२६	१०९
मतिः	....	....	....	४	२७	१०९
आलस्यम्	....	....	....	४	२७	१०९
आवेगः सभेदः	....	....	....	४	२८	१०९
वितर्कः	....	....	....	४	२८	११२
अवहित्थम्	....	....	....	४	२९	११२
व्याधिः	....	....	....	४	२९	११२
उन्मादः	....	....	....	४	३०	११२
विषादः	....	....	....	४	३१	११३
औत्सुक्यम्	....	....	....	४	३२	११३
चापलम्	....	....	....	४	३३	११३
स्थायी	....	....	....	४	३४	११४
स्थायिनामानि	....	....	....	४	३४	११५
शान्तरसे शमस्थायिनि विप्रतिपत्तिः	....	....	....	४	३९	११७
स्थायिभावोपसंहारः	....	....	....	४	३६	११७
काव्येषु स्थायिभावस्यैव वाक्यार्थत्वम्	....	....	....	४	३७	१२०
रसिकमात्रवृत्तित्वं रसस्य	....	....	....	४	३८	१२१
धीरोदात्ताद्यवस्थाप्रतिपादकाः	....	....	....	४	४०	१२२
धीरोदात्ताद्यवस्थानामेव रसहेतुत्वम्	....	....	....	४	४१	१२२
श्रोतृणामास्वादहेतुत्वम्	....	....	....	४	४२	१२२
नर्तकेऽप्यास्वादः	....	....	....	४	४२	१२२
आस्वादस्य लक्षणं भेदाश्च	....	....	....	४	४३	१२३
शमस्यानिर्वचनीयता	....	....	....	४	४५	१२४

		प्रकाश।	श्लोक।	पृष्ठ।
विभावाद्युपसंहारः	....	४	४६	१२४
रसभावयोर्लक्षणैक्यप्रतिज्ञा	....	४	४७	१२४
शृङ्गारः	....	४	४८	१२४
भावसंस्थ्या	....	४	४९	१२५
शृङ्गारस्य भेदाः	....	४	५०	१२५
अयोगः	....	४	५०	१२५
तस्य दशावस्था	....	४	५१	१२५
अभिलाषः	....	४	५३	१२५
दर्शनश्रवणे	....	४	५४	१२५
वृत्तीनां दशावस्थानामपि महाकविनिबन्धेष्व-		४	५४	१२८
नेकविवत्वम्	....	४	५५	१२८
दिङ्गात्रम्	....	४	५६	१२८
विप्रयोगद्विध्यम्	....	४	५७	१२८
मानद्वैविध्यम्	....	४	५८	१२९
प्रणयमानः	....	४	५८	१२९
ईर्प्योमानत्रैविध्यम्	....	४	५९	१२९
श्रुतिः	....	४	५९	१२९
आनुमानिकखिविधः	....	४	६०	१२९
दृष्टः	....	४	६०	१२९
मानोपचारः	....	४	६१	१३०
साम	....	४	६२	१३०
भेदः	....	४	६२	१३०
दानम्	....	४	६२	१३०
सामादीनां कार्यासाधकत्वे उपेक्षा	....	४	६३	१३०
रभसादिना कोपनाशे रसान्तरत्वम्	....	४	६३	१३०
कार्यजप्रवासविप्रयोगखिधा	....	४	६४	१३०
संभ्रमजप्रवासविप्रयोगः	....	४	६५	१३०
शापजप्रवासः	....	४	६६	१३०
मृते तु शोक एव न शृङ्गारः	....	४	६७	१३०

			प्रकाशे।	स्थोकः।	पृष्ठे।
उत्का	....	....	४	६८	१३३
प्रोपितप्रिया	....	....	४	६८	१३३
कलहन्तरिता	....	....	४	६८	१३३
खण्डिता	....	....	४	६८	१३३
संभोगः	....	....	४	६९	१३३
संभोगे लीलाद्या दश चेष्टा:	....	....	४	७०	१३४
नायककर्तव्यम्	....	....	४	७१	१३४
वीरखिधा	....	....	४	७२	१३४
बीभत्सखिधा	....	....	४	७३	१३५
रौद्रखिधा	....	....	४	७४	१३५
हास्यखिधा	....	....	४	७५	१३५
स्मितम्	....	....	४	७६	१३६
हसितम्	....	....	४	७६	१३६
विहसितम्	....	....	४	७६	१३६
उपहसितम्	....	....	४	७६	१३६
अपहसितम्	....	....	४	७७	१३६
अतिहसितम्	....	....	४	७७	१३६
उत्तममध्यमाधमभेदेन हसितभेदाः	....	....	४	७७	१३६
हासव्यभिचारिणः	....	....	४	७८	१३७
अज्ञुतः	....	....	४	७८	१३७
अज्ञुतानुभावव्यभिचारिणः	....	....	४	७९	१३७
भयानकः	....	....	४	८०	१३८
भयानकानुभावव्यभिचारिणः	....	....	४	८०	१३८
करुणः	....	....	४	८१	१३८
करुणानुभावव्यभिचारिणः	....	....	४	८२	१३८
प्रीतिभक्त्यादीनामन्तर्भीवः	....	....	४	८३	१३९
भूपणादीनामन्तर्भीवः	....	....	४	८४	१३९
सर्वस्यापि रमभानोपादानम्	....	....	४	८५	१३९
ग्रन्थसमाप्तिः	....	....	४	८६	१३९

॥ श्रीः ॥  
**श्रीधनंजयविरचितं**  
**दशरूपकम् ।**

**धनिककृतयावलोकाख्यया व्याख्यया समेतम् ।**

प्रथमः प्रकाशः ।

इह सदाचारं प्रमाणयद्विरविघ्नेन प्रकरणस्य समाधर्थमिष्टयोः प्रकृताभिमतदेवतयोर्नमस्कारः कियते श्लोकद्वयेन—

**नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्ठः पुष्करायते ।**

**मदाभोगघनध्वनो नीलकण्ठस्य ताण्डवे ॥ १ ॥**

यस्य कण्ठः पुष्करायते मृदङ्गवदाचरति । मदाभोगेन घनध्वनो निविडध्वनिः । नीलकण्ठस्य शिवस्य ताण्डव उद्भवे नृते । तस्मै गणेशाय नमः । अत्र स्पष्टश्लेषाक्षिप्यमाणोपमाच्छायालंकारः । नीलकण्ठस्य मयूरस्य ताण्डवे यथा मेघवनिः पुष्करायत इति प्रतीतेः ॥

**दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति भावकाः ।**

**नमः सर्वविदे तस्मै विष्णवे भरताय च ॥ २ ॥**

एकत्र मत्स्यकूर्मादिप्रतिमानामुद्देशेन, अन्यत्रानुकृतिरूपनाटकादिना यस्य भावका ध्यातारो रसिकाश्र माद्यन्ति हृष्यन्ति तस्मै विष्णवेऽभिमताय प्रकृताय भरताय च नमः ॥

**श्रोतुः प्रवृत्तिनिमित्तं प्रदर्शयते—**

**कस्यचिदेव कदाचिह्यया विषयं सरस्वती विदुषः ।**

**घटयति कमपि तमन्यो व्रजति जनो येन वैदग्धीम् ॥ ३ ॥**

तं कंचिद्विषयं प्रकरणादिरूपं कदाचिदेव कस्यचिदेव कवे: सरस्वती योजयति । येन प्रकरणादिना विषयेणान्यो जनो विदग्धो भवति ॥

**स्वप्रवृत्तिविषयं दर्शयति—**

**उद्धृत्योद्धृत्य सारं यमखिलनिगमान्ब्राह्यवेदं विरिच्छि-**

**श्रके यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठः ।**

**शर्वाणी लास्यमस्य प्रतिपदमपरं लक्ष्म कः कर्तुमीष्टे**

**नाव्यानां किंतु किंचित्प्रगुणरचनया लक्षणं संक्षिपामि ॥ ४ ॥**

यं नाथ्यवेदं वेदेभ्यः सारमादाय ब्रह्मा कृतवान्, यत्संबद्धमभिनयं भर-  
तश्चकार करणाङ्गहारानकरोत्, हरस्ताण्डवमुद्धतं लास्यं सुकुमारं नृतं पा-  
र्वती कृतवती, तस्य सामस्त्येन लक्षणं कर्तुं कः शक्तः । तदेकदेशस्य तु  
दशरूपस्य संक्षेपः क्रियत इत्यर्थः ॥

गिगैयग्रमत्तं पौनस्त्वयं परिहरति—

व्याकीर्णे मन्दवुद्धीनां जायते मतिविभ्रमः ।

तस्यार्थस्तत्पदैस्तेन संक्षिप्य क्रियतेऽञ्जसा ॥ ५ ॥

व्याकीर्णे विक्षिसे विस्तीर्णे च रसशास्त्रे मन्दवुद्धीनां पुंसां मतिमोहो  
भवति, तेन तस्य नाथ्यवेदस्यार्थस्तत्पदैरेव संक्षिप्य ऋजुवृत्त्या क्रियत इति ॥

इदं प्रकरणं दशरूपज्ञानफलम् । दशरूपं गिफलमित्याह—

आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमत्पवुद्धिः ।

योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्गुखाय ॥ ६ ॥

तत्र केचित् ‘पर्मार्गाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च । करोति कीर्ति  
प्रीति च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥’ इत्यादिना त्रिवर्गादिव्युत्पत्तिं काव्यफल-  
त्वेनेच्छन्ति तत्त्विरासेन स्वसंवेद्यः परमानन्दरूपो रसास्वादो दशरूपाणां  
फलम्, न पुनरितिहासादिवत्रिवर्गादिव्युत्पत्तिमात्रमिति दर्शितम् । नम इति  
सोऽल्पम् ॥

‘नाथ्यानां लक्षणं संक्षिपामि’ इत्युक्तम् । किं पुनस्तन्नाथ्यमित्याह—

अवस्थानुकृतिर्नाथ्यं

काव्योपनिवद्धधीरोदात्तावस्थानुकारश्चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्या त-  
र्नाथ्यम् ॥

रूपं दृश्यतयोच्यते ।

तदेव नाथ्यं दृश्यमानतया रूपमित्युच्यते । नीलादिरूपवत् ॥

रूपकं तत्समारोपाद्

नेटे रामाद्यवस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्यूपकम् । मुखचन्द्रादिवदित्येकस्मिन्नर्थे  
प्रवर्तमानस्य शब्दत्रयस्य ‘इन्द्रः पुरंदरः शकः’ इतिवत्प्रवृत्तिनिमित्तमेदो  
दर्शितः ॥

दशर्थैव रसाश्रयम् ॥ ७ ॥

१

प्रथमः प्रकाशः ।

रसानाश्रित्य वर्तमानं दशप्रकारकम् । एवेत्यवभागणं शुद्धाभिप्रायेण  
नाटिकायाः संकीर्णत्वेन वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तानेव दशभेदानुद्दिशति—

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं द्विषः ।

व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति ॥ ८ ॥

ननु ‘डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणीप्रस्थानरासकाः । काव्यं च सप्र  
नृत्यस्य भेदाः स्युस्तेऽपि भाणवत् ॥’ इति रूपकान्तराणामपि भावादवधा-  
रणानुपपत्तिरित्याशङ्कचाह—

अन्यद्वावाश्रयं नृत्यं

रसाश्रयान्नाद्याद्वावाश्रयं नृत्यमन्यदेव । तत्र भावाश्रयमिति विप्रयमे-  
दानृत्यमिति नृतेर्गात्रविक्षेपार्थत्वेनाङ्गिकवाहुल्यात्तकारिषु च नर्तकव्यपदे-  
शाल्लोकैऽपि चात्र प्रेक्षणीयकमिति व्यवहारान्नाटकादेस्त्वनृत्यम् । तद्देव-  
त्वाच्छ्रीगदितादेववारणोपपत्तिः । नाटकादि च रसविप्रयम् । रसस्य च  
पदार्थीभूतविभावादिरूपमंगाद्यस्त्वागार्थादेतुकत्वाद्वाक्यार्थाभिनयात्मकत्वं  
रसाश्रयमित्यनेन दर्शितम् । नाट्यमिति च ‘नठ अवस्थन्दने’ इति नटः  
मिति च नार्थाद्यासात्त्वाद्यानुगम् । अतएव तत्कारिषु नटव्यपदेशः ।  
यथा च गात्रविसंपाठीने समानैऽप्यनुकारात्मकत्वेन नृत्तादन्यनृत्यं तथा  
वाक्यार्थाभिनयात्मकान्नाद्यात्मदार्थाभिनयात्मकमन्यदेव नृत्यमिति ॥

प्रसङ्गान्तरूपं व्युत्पादयति—

नृत्तं ताललयाश्रयम् ।

तालश्चञ्चत्पुण्ड्रिः । लयो द्रुतादिः । तन्मात्रापेक्षोऽङ्गविक्षेपोऽभिनय-  
शून्यो नृत्यमिति ॥

अनन्तरोक्तं द्वितयं व्याचष्टे—

आद्यं पदार्थाभिनयो मार्गो देशी तथा परम् ॥ ९ ॥

नृत्यं पदार्थाभिनयात्मकं मार्ग इति प्रसिद्धम् । नृत्तं च देशीति ॥  
द्विविधस्यापि द्वैविध्यं दर्शयति—

मधुरोद्धतभेदेन तद्वयं द्विविधं पुनः ।

लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्यपकारकम् ॥ १० ॥

सुकुमारं द्रव्यमपि लास्यमुद्धतं द्वितयमपि ताण्डवमिति । प्रसङ्गोक्तस्यो-

पयोगं दर्शयति—तच्च नाटकाद्युपकारकमिति । नृत्यस्य क्वचिदवान्तरपदार्थ-  
भिनयेन नृत्यस्य च शोभाहेतुत्वेन नाटकादाद्युपयोग इति ॥

अनुकारात्मकत्वेन रूपाणामभेदात्मिककृतो भेद इत्याशङ्क्याह—

वस्तु नेता रसस्तेषां भेदको

वस्तुभेदान्नायकभेदाद्रसभेदाद्युपाणामन्योन्यं भेद इति ॥

वस्तुभेदमाह—

वस्तु च द्विधा ।

कथमित्याह—

तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः ॥ ११ ॥

प्रधानभूतमाधिकारिकम् । यथा रामायणे रामसीतावृत्तान्तः । तदङ्गभूतं  
प्रासङ्गिकम् । यथा तत्रैव विभीषणसुग्रीवादिवृत्तान्त इति ॥

निरुत्याधिकारिकं लक्षयति—

अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ।

तत्रिवर्त्यमेभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ॥ १२ ॥

फलेन स्वस्वामिसंबन्धोऽधिकारः फलस्वामी चाधिकारी तेनाधिकारेणा-  
धिकारिणा वा निवृत्तं फलपर्यन्ततां नीयमानमितिवृत्तमाधिकारिकम् ॥

प्रासङ्गिकं व्याचषे—

प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः ।

यस्येतिवृत्तस्य परप्रयोजनस्य सतस्तप्रसङ्गात्स्वप्रयोजनसिद्धिस्तप्रासङ्गि-  
कमितिवृत्तं प्रसङ्गनिवृत्तेः ॥

प्रासङ्गिकमपि पताकाप्रकरीभेदाद्विभित्याह—

सानुवन्यं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ॥ १३ ॥

दूरं यदनुवर्तते प्रासङ्गिकं सा पताका । सुग्रीवादिवृत्तान्तवत् । पताके-  
वासाधारणनायकचिह्नवत्तदुपकारित्वात् । यदल्पं सा प्रकरी । श्रवणादि-  
वृत्तान्तवत् ॥

पताकाप्रसङ्गेन पताकास्थानकं व्युत्पादयति—

प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम् ।

पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम् ॥ १४ ॥

१. ‘अतिव्यापि’ इति पाठः.

प्राकरणिकस्य भाविनोऽर्थस्य सूचकं रूपं पताकावद्वतीति पताकास्था-  
नकम् । तच्च तुल्येतिवृत्ततया तुल्यविशेषणतया च द्विप्रकारम् । अन्योक्तिम-  
मासोक्तिभेदात् । यथा रत्नावल्याम्—

‘यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष सुसा मग्नैव भवती प्रतिबोधनीया ।

प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ॥’

यथा च तुल्याम् ॥—

‘उद्धमोत्कलिकां विषाणुररुचं प्रारब्धवन्मध्यां क्षणा-  
दायासं श्रसनोद्भैरविरलैरातन्वतीमात्मनः ।

अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं

पश्यन्कोपविषाणुर्द्युति मुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ॥’

एवमाधिकारिकद्विविधप्रासङ्गिभेदात्रिविधस्यापि त्रैविष्यमाह—

प्रख्यातोत्पाद्यमित्रत्वभेदात्रेधापि तत्रिधा ।

प्रख्यातमितिहासादेरुत्पादं कविकल्पितम् ॥ १५ ॥

मिश्रं च संकरात्माभ्यां दिव्यमर्त्यादिभेदतः ।

इति निगदव्याख्यातम् ॥

तस्येतिवृत्तस्य किं फलमित्याह—

कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च ॥ १६ ॥

धर्मार्थकामाः फलम् । तच्च शुद्धमेकमेकानुबन्धं द्वित्यनुबन्धं वा ॥

तत्साधनं व्युत्पादयति—

स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्देतुर्बाजं विस्तार्यनेकधा ।

स्तोकोद्दिष्टः कार्यसाधकः पुरस्तादनेकप्रकारं विस्तारी हेतुविशेषो बीज-  
वद्धीनम् । यथा रत्नावल्यां वत्सराजस्य रत्नावलीप्राप्तिहेतुरनुकूलदैवो यौ-  
गंधरायणव्यापारो विष्कम्भके न्यस्तः—‘यौगंधरायणः—कः सदेहः ।  
(‘द्वीपादन्यस्मात्—इति पठति ।)’ इत्यादिना ‘प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ’  
इत्यन्तेन ।

यथा च वेणीसंहरे द्वौपदीकेशसंयमनहेतुर्भीमक्रोधोपचित्युषिष्ठिरो-  
त्साहो बीजमिति । तच्च महाकार्यावान्तरकार्यहेतुभेदादनेकप्रकारमिति ॥

१. ‘नान्तो’, ‘त्रेधा’ इति पाठौ.

अवान्तरबीजस्य संज्ञान्तरमाह—

अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम् ॥ १७ ॥

यथा रत्नावल्यामवान्तरप्रयोजनानङ्गपूजापरिसमाप्तौ कथार्थविच्छेदे सत्य-  
नन्तरकार्यहेतुः—‘उदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते । सागरिका—(भ्रुत्वा ।) कैहं  
एसो सो उदयणणरिन्दो जस्स अहं तादेण दिण्णा ।’ इत्यादि । विन्दुर्जले  
तैलविन्दुवत्प्रसारित्वात् ॥

इदानीं पताकाद्यं प्रसङ्गाद्वच्छुत्क्रमोक्तं क्रमार्थमुपसंहरन्नाह—

वीजविन्दुपताकारूपप्रकरीकार्यन्तः ॥ ।

अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः ॥ १८ ॥

अर्थप्रकृतयः प्रयोजनसिद्धिहेतवः ॥

अन्यद्वस्थापञ्चकमाह—

अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।

आरम्भयत्वप्राप्याशानियतासिफलागमाः ॥ १९ ॥

यथोदेशं लक्षणमाह—

आौत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे ।

इदमहं संपाद्यामीत्यवसायमात्रमारम्भ इत्युच्यते । यथा रत्नाव-  
ल्याम्—‘प्रारम्भेऽस्मिन्स्यामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्यं दत्तहस्तावलम्बे ।’  
इत्यादिना सच्चिवायत्तसिद्धेवंत्सराजस्य कार्यारम्भो यैगंवरग्रयणम् ।  
दर्शितः ॥

अथ प्रयत्नः—

प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ॥ २० ॥

तस्य फलस्याप्राप्तावृपाययोजनादिरूपश्चेष्टाविशेषः प्रयत्नः । यथा रत्न-  
वल्यामात्रेऽस्याभिलेखनादिर्वत्सराजसमागमोपायः—‘तेहावि णत्थि अणो  
दंमणुवा ओ त्ति जहातहा आलिहिअ जथासमीहिअ करिस्मम् ।’ इत्यादिना  
प्रतिपादितः ॥

१. ‘कथमेष स उदयननरेन्द्रो यस्याहं तानेन दत्ता ।’ इति च्छाया. २. ‘तथापि  
नास्त्यन्यो दर्शनोपाय इति यथातथालिल्य यथासमीहितं करिष्यामि ।’ इति च्छाया.

प्राप्त्याशामाह—

उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः ।

उपायस्यापायशङ्कायाश्च भावादनिर्धारितैकान्ता फलप्राप्तिः प्राप्त्याशा । यथा रत्नावल्यां तृतीयेऽङ्के वेषपरिवर्ताभिसरणादौ समागमोपये सति वा-सवदत्तालक्षणापायशङ्कायाः—‘एवं जदि अआलवादाली विअ आअच्छुभ अण्णदो ण णइस्सदि वासवदत्ता ।’ इत्यादिना दर्शितत्वादनिर्धारितैकान्ता स-मागमप्राप्तिरुक्ता ॥

नियताप्राप्तिमाह—

अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्रिः सुनिश्चिता ॥ २१ ॥

अपायाभावादवधारितैकान्ता कर्त्तव्याप्रिर्नियताप्रिरिति । यथा रत्नाव-ल्याम्—‘विदूपकः—सागरिका दुक्करं जीविस्सदि ।’ इत्युपक्रम्य ‘किं ण उपायं चिन्तेसि ।’ इत्यनन्तरम् ‘राजा—वयस्य, देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि ।’ इत्यनन्तराङ्कार्थविन्दुनानेन देवीलक्षणापायम्य प्रसादनेन निवारणान्वियता फलप्राप्तिः सूचिता ॥

फलयोगमाह—

समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः ।

यथा रत्नावल्यां रत्नावलीलाभचक्रवर्तित्वावाप्तिरिति ॥

संविलक्षणमाह—

अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः ॥ २२ ॥

यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च संधयः ।

अर्थप्रकृतीनां पञ्चानां यथासंख्येनावस्थाभिः पञ्चभिर्योगदाथासंख्येनैव वक्ष्यमाणा मुखाद्याः पञ्च संधयो जायन्ते ॥

संधिसामान्यलक्षणमाह—

अन्तरैकार्थसंबन्धः संधिरेकान्वये सति ॥ २३ ॥

एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथांशानामवान्तरैकप्रयोजनसंबन्धः संधिः ॥

के पुनस्ते संधयः—

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावर्मशोपसंहृतिः ।

१. ‘एवं यद्यकालवातालीवागत्यान्यतो न नेष्यति वासवदत्ता ।’ इति च्छाया. २. ‘सा-गरिका दुक्करं जीविष्यनि ।’ इति च्छाया. ३. ‘किं नोपायं चिन्तयसि ।’ इति च्छाया.

दशरूपके

यथोदेशं लक्षणमाह—

मुखं वीजसमुत्पत्तिर्नार्थरसमंभवा ॥ २४ ॥

अङ्गानि द्वादशैतस्य वीजारम्भसमन्वयात् ।

बीजानामुत्पत्तिरनेकप्रकारप्रयोजनस्य रसस्य च हेतुमुखसंधिरिति व्याख्येयम् । तेनात्रिवर्गफले प्रहसनादौ रसोत्पत्तिहेतोरेव बीजत्वमिति । अस्य च वीजारम्भार्थयुक्तानि द्वादशाङ्गानि भवन्ति ॥

तान्याह—

उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम् ॥ २५ ॥

युक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभावना ।

उद्भेदभेदकरणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम् ॥ २६ ॥

एतेषां स्वसंज्ञाव्याख्यातानामपि सुखार्थं लक्षणं क्रियते—

बीजन्यास उपक्षेपः

यथा रत्नावल्याम्—‘नेपथ्ये ।’

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेदिंशोऽप्यन्तात् ।

आनीय झटिति घट्यति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥’

इत्यादिना यौगंधरायणो वत्सराजस्य रत्नावलीप्राप्तिहेतुभूतमनुकूलदैवं स्वव्यापारं बीजत्वेनोपक्षिप्तवानित्युपक्षेपः ॥

परिकरमाह—

तद्वाहुल्यं परिक्रिया ।

यथा तत्रैव—‘अन्यथा क्व सिद्धादेशप्रत्ययप्रार्थितायाः सिंहलेशं हितुः समुद्रे प्रवहणमङ्गमग्रोत्थितायाः फलकासादनम् ।’ इत्यादिना ‘सर्वथा सृशन्ति स्वामिनमभ्युदयाः ।’ इत्यनेन बीजोत्पत्तेरेव बहूकरणात्परिकरः ॥

परिन्यासमाह—

तन्निष्पत्तिः परिन्यासो

यथा तत्रैव—

‘प्रारम्भेऽस्मिन्यस्मामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्थं दत्तहस्तावलम्बे ।

सिद्धेर्भान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाकारी भीत एवास्मि भर्तुः ॥’

इत्यनेन यौगंधरायणः स्वव्यापारदैवयोर्निष्पत्तिमुक्तवानिति परिन्यासः ॥

१. ‘संश्रया’ इति पाठः.

विलोभनमाह—

गुणाख्यानं विलोभनम् ॥ २७ ॥

यथा रत्नावल्याम्—

‘अम्नापास्तममस्तभासि नमसः पारं प्रयत्ने रवा-  
वास्थानीं समये समं नृपजनः सायंतने संपतन् ।

संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादांस्तवासेवितुं  
प्रीत्युत्कर्षकृतो दशामुदयनस्येन्दोरिवोद्धीक्षते ॥’

इति वैतालिकमुखेन चन्द्रतुल्यवत्सराजगुणवर्णनया सागरिकायाः समाग-  
महेत्वनुरागबीजानुगुण्यैव विलोभनाद्विलोभनमिति ।

यथा च वेणीसंहरे—

‘मन्थायस्तार्णवाम्भः प्रुतकुहरवलमन्दरध्वानधीरः  
कोणाश्रानेषु गर्जन्त्रश्वनशन्योन्यमंपद्मण्ड ।

कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिधीतवातः  
केनाम्पनिम्बहना इप्रतिगमिनमग्ने दुन्दुभिस्ताडिनोऽयम् ॥’

इत्यादिना ‘यशोदुन्दुभिः’ इत्यन्तेन द्रौपद्या विलोभनाद्विलोभनमिति ॥

अथ युक्तिः—

संप्रथारणमर्थानां युक्तिः

यथा रत्नावल्याम्—‘मयापि चैनां देवीहस्ते सबहुमानं निक्षिपता युक्त-  
मेवानुष्ठिनम् । कथितं च मया यथा बाभ्रव्यः कञ्चुकी सिंहलेश्वरामात्येन वसु-  
भूतिना सह कथंकथमपि समुद्रादुत्तीर्य कोशलोच्छित्तये गतस्य रूपण्वतो  
वष्टिः ।’ इत्यनेन सागरिकाया अन्तःपुरस्थाया वत्सराजस्य सुखेन दर्शनादि-  
प्रयोजनावधारणाद्वाभ्रव्यसिंहलेश्वरामात्ययोः स्वनायकसमागमहेतुप्रयोजन-  
त्वेनावधारणायुक्तिरिति ॥

अथ ग्रासिः—

प्रासिः सुखागमः ।

यथा वेणीसंहरे—‘चेटी—भैट्टिणि, परिकुविदो विअ कुमारो ल-  
क्षीयदि ।’ इत्युपक्रमे ‘भीमः—

१. ‘गुणाख्यानात्’ इति पाठः. २. ‘भर्त्रि, परिकुपित इव कुमारो लक्ष्यते ।’ इति  
च्छाया.

मशामि कौरवशतं समरे न कोपा-  
 हुशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः ।  
 संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरु  
 संधिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन ॥

**द्रौपदी**—(थुत्वा सहर्षम् ।) नीध, अस्युदपुवं खु एदं वअणम् । ता पुणो पुणो भण । इत्यनेन भीमक्रोधबीजान्वयेनैव सुखप्राप्त्या द्रौपद्याः प्राप्तिरिति ।

यथा च रत्नावल्याम्—‘सागरिका’—(थुत्वा सहर्षं परिवृत्त्य सम्पृष्ठं पश्यन्ती ।) कैवं अंतं सो राआ उदयणो जस्स अहं तादेण दिण्णा । ता परप्पेमणदृसिदं मे जीविदं एदस्स दंसणेण वहुमदं संजादम् । इति सागरिकायाः गुणगगाण्याप्तिरिति ॥

अथ समाधानम्—

### बीजागमः समाधानं

यथा रत्नावल्याम्—‘वासवदत्ता’—तेण हि उअणेहि मे उवअरणाइ । **सागरिका**—भृद्विणि, एदं सबं सज्जम् । **वासवदत्ता**—(विहरपात्रसमाप्तम्) अँहो प्रमादो परिअणस्म । जस्स एव दंसणपहादो पअत्तेण रक्तवीजदि तस्स ज्ञेव कहं द्रिडिगोजरं आअदा । भोदु । एवं दाव । (प्रकाशम् ।) हज्जे सागरिए, कीस तुमं अज्ज पराहीणे परिअणे मअण्णस्वे सारिअं मोत्तूण इहागदा । ता तहिं जेव गच्छ । इत्युपक्रमे ‘सागरिका’—(स्वगतम् ।) ‘भारिआ द मए सुसंगदाए हत्ये समप्पिदा । पेक्षित्वं च मे कुतूहलम् । ता नल-क्षिवआ पेक्षिस्सम् ।’ इत्यनेन वासवदत्ताया रत्नावलीवत्सराज्योदीर्श-

१. ‘नाथ, अमुतपूर्वी खलेतद्वचनम् । तथुनुः पुनर्भण ।’ इति च्छाया.
२. ‘कथमयं स राजोदयनो यस्याहं तातेन दत्ता । तत्परप्रेपणदृपितं मे जीवितमंतस्य दर्शनेन वहुमतं संजातम् ।’ इति च्छाया.
३. ‘तेन ह्युपनय म उपकरणानि ।’ इति च्छाया.
४. ‘भाङ्गि, एतत्सर्वं सज्जम् ।’ इति च्छाया.
५. ‘अहो प्रमादः परिजनस्य । यस्येव दर्शनपयाप्रयदेन रक्ष्यते तस्यैव कथं द्रिगोचरमागता । भवतु । एवं तावत् । चेटि सागरिके, कथं त्वमय पराधीने परिजने मदनोत्सवे सारिकां मुक्त्वेहागता । तस्मात्तदेव गच्छ ।’ इति च्छाया.
६. ‘सारिका तावन्मया सुसंगताया हस्ते समर्पिता । प्रेक्षित्वं च मे कुतूहलम् । तदलक्षिता प्रेक्षिष्ये ।’ इति च्छाया.

नप्रतीकारात्सारिकायाः सुसंगतार्पणेनालक्षितप्रेक्षणेन च वत्सगजसमागमहे-  
तोर्बीजस्योपादानात्समाधानमिति ।

यथा च वेणीमंहरे—‘भीमः—भवतु । पाश्चालराजतनये, श्रूयताम्-  
चिरेणैव कालेन

चञ्चल्द्वुजव्रमितनश्चिंडगदाभिवानमंचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।  
स्व्यानावनद्वनशोणितशोणाणिश्चतंमणिधनि कचांस्तत्र देवि भीमः॥’  
इत्यनेन वेणीमंहारहेतोः त्रिभीजस्य पुनरुषादानात्समाधानम् ॥

अथ विधानम्—

**विधानं सुखदुःखकृत् ॥ २८ ॥**

यथा मालतीमाप्ने प्रथमेऽङ्के—‘माधवः—

युन्त्या महुर्वित्तकन्नगमाननं त-  
दावृत्तवृत्तशतपत्तिभं वहन्त्या ।

दिग्घोऽस्तेन च विषेण च पदमलादया  
गाहं निखात इव मे हृदये कटासः ॥

परिमयगमितमन्नमिताः॥नामा ।  
मागर्दमन्नमग्नानादिग्नाम् ।

तत्सनियौ तदधुना हृदयं मदीय-  
मङ्गारचुम्बितमिव न्यगमानमाने ॥’

इत्यनेन मालत्यवलोकनस्यानुरागस्य समागमहेतोर्बीजानुगुण्येनैव माधवस्य  
सुखदुःखकारित्वाद्विधानमिति ।

यथा च वेणीमंहरे—‘द्रौपदी—र्णाध, पुणोवितुम्भेहि अहं आअच्छ्व  
समाप्तसिद्ध्वा । भीमः—ननु पाश्चालराजतनये, किमद्याप्यलीकाश्रासनया ।

भूयः परिभवक्तान्तिलज्जाविधुरिताननम् ।

अनिःशेषितकौरव्यं न पश्यसि वृकोदरम् ॥’

इति सङ्गामस्य सुखदुःखहेतुत्वाद्विधानमिति ॥

अथ परिभावना—

**परिभावोऽङ्कुतावेश**

१. ‘नाथ, पुनरपि त्वयाहमागत्य समाधासयितव्या ।’ इति च्छाया.

यथा रत्नावल्याम्—‘सागरिका—(द्वा सविस्मयम् ।) केऽधं पच्चक्षो  
ज्ञेव अणङ्गो पूअं पडिच्छेदिता । अहंपि इधं डिदं ज्ञेव णं पूजइस्मम् ।’  
इत्यनेन वत्सराजस्यानङ्गरूपतयापहवादनङ्गस्य च प्रत्यक्षस्य पूजाग्रहणस्य  
लोकोत्तरत्वादद्भुतरसावेशः परिभावना ।

यथा च वेणीसंहारे—‘द्रौपदी—किं दाणिं एसो पलभजलधरत्थणि-  
दमंसलो खणे खणे समरदुन्दुभी ताढीयदि ।’ इति लोकोत्तरसमरदुन्दु-  
भित्वनेविस्मयरसावेशाद्वैपद्याः परिभावना ॥

अथोद्देदः—

### उद्देदो गृहभेदनम् ।

यथा रत्नावल्यां वत्सराजस्य कुसुमायुधव्यपदेशगृहस्य वैतालिकवचसा ‘अ-  
स्तापास्त्’ इत्यादिना ‘उद्यनस्य—’ इत्यनेन बीजानुगुण्येनैवोद्देदनादुद्देदः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘आर्य, किमिदानीमध्यवस्थति गुरुः ।’ इत्युपक्रमे  
(नेपथ्ये ।)

यत्सत्यवत्तभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं

यद्विस्मर्तुमर्पीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता ।

तद्वृत्तारणिसंभृतं नृपमुताकेशाभ्यराकर्षणैः

क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ॥

भीमः—(सहर्षम् ।) जृम्भतां जृम्भतां संप्रत्यप्रतिहतमार्यस्य क्रोध-  
ज्योतिः ।’ इत्यनेन छन्नस्य द्रौपदीकेशसंयमनहेतोर्युधिष्ठिरक्रोधसोद्देद-  
नादुद्देदः ॥

अथ करणम्—

### करणं प्रकृतारम्भो

यथा रत्नावल्याम्—‘ऐमो दे कुसुमाउह, ता अमोहदंसणो मे भवि-  
स्सि ति । दिदुं जं पेक्खिदव्यम् । ता जाव ण को वि मं पेक्खइ ता गमिस्सम् ।’  
इत्यनेनानन्तराङ्गप्रकृतनिर्विद्वदर्शनारम्भणात्करणम् ।

१. ‘कथं प्रत्यक्ष एवानङ्गः पूजां प्रतिच्छेदिता । अहमपीहस्थैरैनं पूजयिष्यामि ।’ इति  
च्छाया. २. ‘किमिदानीमेष प्रलयजलधरस्तनितमांसलः क्षणे क्षणे समरदुन्दुभिस्ताङ्ग-  
ते ।’ इति च्छाया. ३. ‘नमस्ते कुसुमायुध, तदमोघदर्शनो मे भविष्यसीति । हर्षं यत्प्रे-  
क्षितव्यम् । तद्यावत् कोऽपि मां प्रेक्षते तद्वामिष्यामि ।’ इति च्छाया.

यथा च वेणीसंहरे—‘तत्पाञ्चालि, गच्छामो वयमिदानीं कुरुकुलक्षयाय’ इति । सहदेवः—आर्य, गच्छाम इदानीं गुरुजनानुज्ञाता विक्रमानुरूपमाचरितुम् ।’ इत्यनेनानन्तराङ्गप्रस्तूयमानसङ्गामारभणात्करणमिति । सर्वत्र चेहोद्देशप्रतिनिर्देशवैषम्यं क्रियाक्रमस्याविवक्षितत्वादिति ॥

अथ भेदः—

**भेदः प्रोत्साहना मता ॥ २९ ॥**

यथा वेणीसंहरे—‘णाथ, मा क्खु जण्णेणीपरिभवुद्दीविद्कोवा अ-णवेक्षिवदसरीरा परिक्रमिस्सध । जदो अप्यमत्तसंचरणीयाइं सुणीयन्ति रिउबलाइं । भीमः—अयि सुक्षत्रिये,

अन्योन्याम्बालभिन्नद्विपुरुधिरवसासान्द्रमस्तिष्कपङ्के

मग्नानां स्यन्दनानामुपरिकृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ ।

स्फीतासृक्ष्यानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कवन्धे

सङ्गैमैकार्णवान्तःपयसि विचरितुं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ॥’

इत्यनेन विषण्णाया द्वौपद्याः क्रोधोत्साहबीजानुगुण्येनैव प्रोत्साहनाद्देद इति ॥

एतानि च द्वादशमुखाङ्गानि बीजारम्भद्योतकानि साक्षात्पारम्पर्यण वा विधेयानि । एतेषामुपक्षेपपरिकरपरिन्यासयुक्तयुद्देदसमाधानानामवश्यं भावितेति ॥

अथ साङ्गं प्रतिमुखसंघिमाह—

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्देदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् ।

**विन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश ॥ ३० ॥**

तस्य बीजस्य किंचिलक्ष्यः किंचिदलक्ष्य इवोद्देदः प्रकाशनं तत्प्रतिमुखम् । यथा रब्बावल्यां द्वितीयेऽङ्के वत्सराजसागरिकासमागमहेतोरनुरागबीजस्य प्रथमाङ्कोपक्षिस्स्य सुसङ्गताविदूषकाभ्यां ज्ञायमानतया किंचिलक्ष्यस्य वासवदत्तया च चित्रफलकवृत्तान्तेन किंचिदुन्नीयमानस्य दृश्यादृश्यरूपतयोद्देदः प्रतिमुखसंघिरिति ।

वेणीसंहरेऽपि द्वितीयेऽङ्के भीष्मादिवधेन किंचिलक्ष्यस्य कर्णाद्यवधा-चालैक्ष्यस्य क्रोधबीजस्योद्देदः

१. ‘नाथ, मा खलु याङ्गेनीपरिभवोद्दीपितकोपा अनवेक्षितशरीराः परिक्रमिष्य । यतोऽप्रमत्तसंचरणीयानि श्रूयन्ते रिउबलानि ।’ इति च्छाया. २. ‘लक्ष्यालक्ष्य इवोद्देदः’ इति पाठः.

‘सहभृत्यगणं सवान्धवं सहमित्रं ससुतं सहानुजम् ।

स्वबलेन निहन्ति संयुगे न चिरात्पाण्डुसुतः सुयोधनम् ॥’

इत्यादिभिः

‘दुःशासनस्य हृदयक्षतजाम्बुपाने  
दुर्योधनस्य च यथा गदयोरुभङ्गे ।  
तेजस्त्विनां समरमूर्च्छनि पाण्डवानां  
ज्ञेया जयद्रथवधेऽपि तथा प्रतिज्ञा ॥’

इत्येवमादिभिश्चोद्भेदः प्रतिमुखसंधिरिति ॥

अस्य च पूर्वाङ्कोपक्षिसविन्दुरूपबीजप्रयत्नार्थानुगतानि त्रयोदशाङ्कानि भवन्ति । तान्याह—

विलासः परिसर्पश्च विभूतं शमनर्मणी ।  
नर्मद्युतिः प्रैगमनं निरोधः पर्युपासनम् ॥ ३१ ॥  
वज्रं पुष्पपुष्पन्यासो वर्णसंहार इत्यपि ।  
यथोद्देशं लक्षणमाह—

रत्नर्थेहा विलासः स्याद्

यथा रत्नावल्याम्—‘सागरिका—हिैअ, पसीद पसीद । किं इमिणा आआसमेत्तफलेण दुल्हनजनप्पत्यणाणुबन्धेण ।’ इत्युपक्रमे ‘तेहावि आलेखगदं तं जनं कदुअ जधासमीहिदं करिस्मम् । तहावि तस्म णत्थि अण्णो दंसणोवाउत्ति ।’ इत्यैर्वत्सराजसमागमराति चित्रादिजन्यामप्युद्दिश्य सागरिकायाश्चेष्टाप्रयत्नोऽनुरागबीजानुगतो विलास इति ॥

अथ परिसर्पः—

दृष्टनष्टानुसर्पणम् ॥ ३२ ॥

परिसर्पो

यथा वेणीसंहारे—‘कञ्चुकी—योऽयमुद्यतेषु बलवत्सु, अथवा किं बलवत्सु, वासुदेवसहायेष्वरिष्वद्याप्यन्तःपुरसुखमनुभवति । इदमपरमयथातयं स्वामिनः ।

१. ‘प्रगयणम्’ इति पाठः. २. ‘रत्नुत्थेहा’ इति पाठः. ३. ‘हृदय, प्रसीद प्रसीद । किमनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेण ।’ इति च्छाया. ४. ‘तथा-प्यालेखगदं तं जनं कृत्वा यथासमीहितं करिष्यामि । तथापि तस्य नास्त्यन्यो दर्शनोपाय इति ।’ इति च्छाया.

आश्रव्यग्रहणाद्कुण्ठपरशोस्तस्यापि जेता मुने-  
स्तापायास्य न पाण्डुसूनुभिरयं भीष्मः शैरैः शायितः ।  
प्रौढानेकधनुर्धरारिविजयश्रान्तस्य चैकाकिनो  
बालस्यायमरातिलूनधनुषः प्रीतोऽभिमन्योर्विधात् ॥'

इत्यनेन भीष्मादिवधे दृष्टस्याभिमन्युवधात्रष्टस्य बलवतां पाण्डवानां वासुदेवस-  
हायानां सङ्घामलक्षणविन्दु बीजप्रयत्नान्वयेन कञ्चुकिमुखेन वीजानुसर्पणं परि-  
सर्प इति ।

यथा च रत्नावल्यां सारंकावचनचित्रदर्शनाभ्यां सागरिकानुरागवीजस्य  
दृष्टनष्टस्य 'कासौ कासौ' इत्यादिना वत्सराजेनानुसरणात्परिसर्प इति ॥

अथ विधूतम्—

### विधूतं स्यादरतिस्

यथा रत्नावल्याम्—'सागरिका—संहि, अहिअं मे संतावो वाधेदि ।  
(सुसङ्गता दीर्घिकातो नलिनीदलानि मृणालिकाशानीयास्या अहे ददाति ।) साग-  
रिका—(तानि क्षिप्तन्ती ।) संहि, अवणेहि एद्वाइं । किं अआरणे अत्ताणं  
आयासेसि । णं भणामि ।

दुल्हजणाणुराओ लज्जा गरुई परव्वसो अप्पा ।

पिअसहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवर एकम् ॥'

इत्यनेन मागरिकाया वीजान्वयेन शीतोपचारविधूननाद्विधूतम् ।

यथा च वेणीसंहारे भानुमत्या दुःखप्रदर्शनेन दुर्योधनस्यानिष्टशङ्क्या  
पाण्डवविजयशङ्क्या वा रत्नविधूननमिति ॥

अथ शमः—

### तच्छमः शमः ।

तस्या अरतेरुपशमः शमः । यथा रत्नावल्याम्—'राजा—वयस्य,  
अनया लिखितोऽहमिति यत्सत्यमात्मन्यिपि मे बहुमानस्तत्कथं न पश्यामि ।'  
इति प्रक्रमे 'सागरिका—(आत्मगतम् ।) हिअंअ, समस्सस । मणोरहो वि-  
दे एत्तिअं भूमिं ण गदो ।' इति किंचिद्रत्युपशमाच्छम इति ॥

१. 'सखि, अधिकं मे संतापो बाधते ।' इति च्छाया. २. 'सखि, अपनयैतानि ।  
किमकारण आत्मानमायासयसि । ननु भणामि ।

दुलेभजनानुरागो लज्जा युर्वी परवदा आत्मा ।

प्रियसखि विषमं ग्रेम मरणं शरणं केवलमेकम् ॥' इति च्छाया.

३. 'हदय, समाश्वसिहि । मनोरथोऽपि त एतावर्तीं भूमिं न गतः ।' इति च्छाया.

अथ नर्म—

### परिहासवचो नर्म

यथा रत्नावल्याम्—‘सुसङ्गता—संहि, जस्स कए तुम आअदा सो अं पुरदो चिदुदि । सागरिका—(सासूयम्) सुसङ्गदे, कस्स कए अं ह आअदा । सुसङ्गता—अइ अप्पसङ्किदे, ण चित्तफलअस्स । ता गेण्ह एदम् ।’ इत्यनेन बीजन्वितं परिहासवचने नर्म ।

यथा च वेणीसंहारे—‘(दुयोधनः) श्रीहन्मार्गपात्रमात्र देव्याः समर्पयति । पुः) भानुमती—(अर्ध दत्ता) हँला, उवणेहि मे कुसुमाइ जाव अवराणं पि देवाणं सवरिअं णिवत्तेमि । (हस्तौ प्रसारयति । दुयोधनः) पुण्यगमनयति । भानुमत्यास्तत्स्पर्शजातकम्पाया हन्मातुपाणि पतन्ति ।’ इत्यनेन नर्मणा दुःखमद-शनोपशमार्थ देवतापूजाविघ्नकारिणा बीजोद्घाटनात्परिहासस्य प्रतिमुखाङ्गत्वं युक्तमिति ॥

अथ नर्मद्युतिः—

### धृतिस्तज्जा द्युतिर्मता ॥ ३३ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘सुसङ्गता—संहि, अदिणिद्वुरा दाणि सि तुमम् । जा एवं पि भट्ठिणा हन्त्यावलभ्यदा कोवं ण मुञ्चसि । सागरिका—(मन्त्रमहमीपद्विदम्) सुसङ्गदे, दाणि पि ण विरमसि ।’ इत्यनेनानुरागबीजोद्घाटनान्वयेन वृत्तिनर्मेजा द्युतिरिति दर्शितमिति ॥

अथ प्रगमनम्—

### उत्तरा वाक्प्रैग्मनं

यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—भो वधस्स, दिद्विआ वड्से । राजा—(सकौतुकम्) वयस्य, किमत् । विदूपकः—भो, एदं क्खु

१. ‘सखि, यस्य क्रते त्वामगता सोऽयं पुरतस्तिष्ठति ।’ इति च्छाया.
२. ‘सुसङ्गते, कस्य क्रतेऽहन्मागता ।’ इति च्छाया.
३. अयि आग्मशाङ्किने, ननु चित्रफलकस्य । तद्विहाणैतत् ।’ इति च्छाया.
४. ‘हँला, उपनय मे कुसुमानि यावदपरेषामपि देवानां सपर्या निवर्तयामि ।’ इति च्छाया.
५. संहि, अतिनिष्ठुरेशनीमणि लम् । यैवमपि भत्री हस्तावलभ्यता कोपं न मुञ्चसि ।’ इति च्छाया.
६. ‘सुसङ्गते, इदानीमपि न विरमसि ।’ इति च्छाया.
७. ‘प्रगयणम्’ इति पाठः.
८. ‘भो वयस्य, दिद्विआ वर्धसे ।’ इति च्छाया.
९. ‘भोः, एतत्खलु तद्यन्मया भणितं ल्वमेवालिस्तिः । कोऽन्यः कुसुमायुधव्यपदेशेन निहूयते ।’ इति च्छाया.

तं जं मए भणिदं तुमं एव आलिहिदो । को अण्गो कुसुमाउहव्ववदेण  
णिष्ठवीअदि ।' इत्यादिना

'परिच्छयुतस्त्कुचकुम्भमध्यात्मिक शोषमायामि मृणालहार ।

न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य नत्रावकाशो भवतः किमु स्यात् ॥'

इत्यनेन राजविदूषकसागरिकासुसङ्गतानामन्योन्यवचनेनोत्तरोत्तरानुरागबी-  
जोद्वाटनात्प्रगमनमिति ॥

अथ निरोधः—

### हितरोधो निरोधनम् ।

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—धिङ् मूर्खं,

प्राप्ता कथमपि दैवात्कष्टमनीतैव सा प्रकटरागा ।

रत्नावलीव कान्ता मम हस्ताद्धन्दशिता भवता ॥’

इत्यनेन वत्सराजस्य सागरिकासमामगमरूपहितस्य वामवद्वाप्रवेशग्रन्थकेन  
विदूषकवचसा निरोधान्विरोधनमिति ॥

अथ पर्युपासनम्—

### पर्युपास्तिरनुनयः

गथा रत्नावल्याम्—‘राजा—

प्रसीदेति बूयामिदमसति कोपे न घटते

करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युपगमः ।

न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि हि ज्ञास्यसि सृष्टा

किमेतस्मिन्वकुं क्षममिति न वेद्यि प्रियतमे ॥’

इत्यनेन नित्रगतयोर्नायिकयोर्दर्शनात्कुपिताया वासवदत्ताया अनुनयनं ना-  
यकयोरनुरागोद्वाटान्वयेन पर्युपासनमिति ॥

अथ पुष्पम्—

### पुष्पं वाक्यं विशेषवत् ॥ ३४ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘(राजा सागरिकां हस्ते गृहीत्वा स्पर्शं नाटयति ।) चि-  
दूषकः—‘भोः, एसा अपुव्वा सिरी तए समाप्तादिदा । राजा—वयस्य,  
सत्यम् ।

१. ‘भोः, पशापूर्वा श्रीस्त्वया समाप्तादिता ।’ इति च्छाया.

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।

कुतोऽन्यथा स्वत्स्वेष स्वेदच्छआमृतद्रवम् ॥'

इत्यनेन नायकयोः साक्षादन्योन्यदर्शनादिना सविशेषानुरागोद्घाटनात्पुण्म्॥

अथोपन्यासः—

### उंपन्यासस्तु सोपायं

यथा रत्नावल्याम्—‘सुसङ्गता—भैष्णा, अलं सङ्गाए । मए वि भ-  
ट्टिणो पसाएण कीलिदं एव । ता किं कण्णाभरणेण । अदो वि मे ग-  
रुओ पसाओ, जं कीस तए अहं एत्य आलिहिअ त्ति कुविआ मे पिअ-  
सही साअरिआ । ता पसादीअदु ।’ इत्यनेन सुसङ्गतावचसा सागरिका  
मया लिखिता सागरिकया च त्वमिति सूचयता प्रसादोपन्यासेन वीजोद्घे-  
दादुपन्यास इति ॥

अथ वज्रम्—

### वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम् ।

यथा रत्नावल्याम्—‘वासवदत्ता—(फलकं निर्दिशम्) अङ्गउत्त, ए-  
सावि जा तुह समीवे, एदं किं वसन्तअस्स विष्णाणम् ।’ पुनः ‘अङ्गउत्त,  
ममावि एदं चित्तकम्भ पेक्खन्तीए सीसवेअणा समुप्पणा ।’ इत्यनेन वासव-  
दत्तया वत्सराजस्य सागरिकानुरागोद्घेदनात्प्रत्यक्षनिष्ठुराभिधानं वज्रमिति ॥

अथ वर्णसंहारः—

### चातुर्वर्ण्योपगमनं वर्णसंहार इष्यते ॥ ३५ ॥

यथा वीरचरिते तृतीयेऽङ्के—

‘परिषदियमृषीणामेष वृद्धो युधाजि-

त्सह नृपतिरमात्यर्लेमपादश्च वृद्धः ।

अयमविरतयज्ञो ब्रह्मवादी पुराणः

प्रभुरपि जनकानामदुहो याचकास्ते ॥’

१. ‘प्रसादनमुपन्यासः’ इति पाठः. २. ‘भर्ते:, अलं शङ्कया । मयापि भर्तुः प्र-  
सादेन कीडितमेव । तर्किं कर्णाभरणेन । असावपि मे गुरुः प्रसाद:, यत्कथं त्वयाहमत्रा-  
लिखितेति कुपिता मे प्रियसखी सागरिका । तत्प्रसाद्यताम् ।’ इति च्छाया. ३. ‘आ-  
र्यपुत्र, एषापि या तव समीपे, एतर्किं वसन्तकस्य विज्ञानम् ।’ इति च्छाया. ४. आर्य-  
पुत्र, ममाप्येतचित्रकर्म पश्यन्त्याः शीर्षवेदना समुत्पन्ना ।’ इति च्छाया. ५. ‘चा-  
तुर्वर्णो’ इति पाठः.

इत्यनेन ऋषिक्षतियामात्यादीनां संगतानां वर्णानां वचसा रामविजयाशं-  
सिनः परशुरामदुर्णयस्यादोहथाच्चाद्वारेणोद्भेदनाद्वर्णसंहार इति ॥

एतानि च त्रयोदश प्रतिमुखाङ्गानि मुखसंध्युपक्षिस्पविन्दुलक्षणावान्त-  
रबीजमहावीजप्रथानुमतानि विधेयानि । एतेरां च मध्ये परिसर्पप्रशमव-  
ज्ञोपन्यासपुष्पाणां प्राधान्यम् । इतरेषां यथासंभवं प्रयोग इति ॥

अथ गर्भसंधिमाह—

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य वीजस्यान्वेषणं मुहुः ।

द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसंभवः ॥ ३६ ॥

प्रतिमुखसंधौ लक्ष्यालक्ष्यरूपतया स्तोकोद्भिन्नस्य वीजस्य सविशेषोद्भेद-  
दपूर्वकः सान्तरायो लाभः पुनर्विच्छेदः पुनः प्राप्तिः पुनर्विच्छेदः पुनश्च त-  
स्यैवान्वेषणं वारंवारं सोऽनिर्धारितैकान्तफलप्राप्त्याशात्मको गर्भसंधिरिति ।  
तत्र चौत्सर्गिकत्वेन प्राप्तायाः पताकायाः अनियमं दर्शयति—‘पताका  
स्यान्न वा’ इत्यनेन । प्राप्तिसंभवस्तु स्यादेवेति दर्शयति—‘स्यात्’ इति ।  
यथा रत्नावल्यां तृतीयेऽङ्के वत्सराजस्य वासवदत्तालक्षणापायेन तद्वे-  
पपरिग्रहसागरिकाभिसरणोपायेन च विदूषकवचसा सागरिकाप्राप्तगागा प्र-  
थमं पुनर्विस्पवदत्यया विच्छेदः पुनः प्राप्तिः पुनर्विच्छेदः पुनरपायनिवारणो-  
गागान्वेषणं ‘नास्ति देवीप्रसादनं मुक्त्वान्य उपायः’ इत्यनेन दर्शतमिति ॥

स च द्वादशाङ्गो भवति । तान्युद्दिशति—

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः ।

संग्रहशानुमानं च तोटकाधिबले तथा ॥ ३७ ॥

उद्वेगसंब्राक्षेपा लक्षणं च प्रणीयते ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

अभूताहरणं छञ्च

यथा रत्नावल्याम्—‘साधु रे अमच्च वसन्तअ, साधु । अदिसऽदो तए  
अमच्चो जोगन्धराअणो इमाए संधिविग्रहचिन्ताए ।’ इत्यादिना प्रवेशकेन  
गृहीतवासवदत्तावेषायाः सागरिकाया वत्सराजाभिसरणं छञ्च विदूषकसु-  
मङ्गताकृतकाञ्चनमालानुवादद्वारेण दर्शितमित्यभूताहरणम् ॥

१. ‘साधु रे अमात्य वसन्तक, साधु । अतिशयितस्त्वयामात्यो यौगंधरायणोऽनय  
संधिविग्रहचिन्तया ।’ इति च्छाया.

अथ मार्गः—

**मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम् ॥ ३८ ॥**

यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—दिद्धिआ वडुसि समीहिद्वभयिकाण्  
कज्जमिद्धीए । राजा—वयस्य, कुशलं प्रियायाः । विदूषकः—अङ्गरेण  
सअं जेव पेक्खिअ जाणिहिसि । राजा—दर्शनमपि भविष्यति । विदू-  
षकः—(सर्गवेम् ।) कैस ण भविस्सदि, जस्स दे उवहसिद्विहप्फदिबु-  
द्धिविहवो अहं अमच्चो । राजा—तथापि कथमिति श्रोनुमिन्नामि ।  
विदूषकः—(कर्णं कथयति ।) एङ्गवेम् । इत्यनेन यथा विदूषकेण साग-  
रिकासमागमः सूचितः, तथैव निश्चितरूपो राजे निवेदित इति तत्त्वार्थ-  
कथनान्मार्ग इति ॥

अथ रूपम्—

**रूपं वितर्कवद्वाक्यं**

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—अहो, किमपि कामिजनस्य स्वगृणी-  
समागमपरिभाविनोऽभिनवं जनं प्रति पक्षपातः । तथाहि ।

प्रणयविशदां दृष्टि वक्त्रे ददाति न शङ्किता

घटयति वनं कण्ठालेषे रसान्न पयोधरौ ।

वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो

रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ॥’

कैथं चिरयति वसन्तकः । किं नु स्वलु विदितः स्यादर्थं वृत्तान्तो देव्या:  
इत्यनेन रत्नावलीसमागमप्राप्याशानुगुण्येनैव देवीशङ्कायाश्च नितर्काद्वप्यग्निता॥

अथोदाहरणम्—

**सोत्कर्पं स्यादुदाहृतिः ।**

यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—(सर्गवेम् ।) ‘ही ही भोः, कौशम्बी-  
रजलाहेणावि ण तादिसो वअस्सस्स परितोसो आसि, यादिसो मम सआ-

१. ‘दिष्या वर्धसै समीहिताभ्ययिकाया कार्यसिद्धा ।’ इति च्छाया. २. ‘अचिरेण  
स्वयमेव प्रेक्ष्य ज्ञास्यसि ।’ इति च्छाया. ३. ‘कथं न भविष्यति, यस्य त उपहसितवृ-  
द्धस्पतिवुद्धिविभवोऽहममात्यः ।’ इति च्छाया. ४. ‘एवम्’ इति च्छाया. ५. ‘ही  
ही भोः, कौशम्बीराजयलाभेनापि न तादशो वयस्य स्य परितोष आसीत्, यादशो सम-  
सकाशात्प्रियवचनं क्षुत्वा भविष्यतीति तर्कयामि ।’ इति च्छाया.

सादो पिअवअणं सुणिअ भविस्सदि त्ति तक्षेमि ।' इत्यनेन रत्नावलीप्राप्ति-  
वार्तापि कौशाम्बीराज्यलभादतिरिच्यत इत्युत्कषाभिथानादुदाहृतिरिति ॥

अथ क्रमः—

### क्रमः संचिन्त्यमानाप्तिर्

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—उपनतप्रियासमागमोत्सवस्यापि मे कि-  
मिदमत्यर्थमुत्ताम्यति चेतः । अथवा ।

तीव्रः स्मरसंतापो न तथादौ बाधते यथासने ।

तपति प्रावृष्णि युतरामम्यर्णजलागमो दिवसः ॥

विदूषकः—(आकर्ष्य ।) ‘भोदि सागरिए, एसो पिअवअस्तो तुमं  
जेव उद्दिमिअ उक्षणाणिभरं मन्तेदि । ता निवेदेमि से तुहागमणम् ।’  
इत्यनेन वत्सराजस्य गागरिकाममागममधिल्पत एव ब्रान्तसागरिकाप्रा-  
सिरिति क्रमः ॥

अथ क्रमान्तरं मतभेदेन—

### भावझानमथापरे ॥ ३९ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—(उपस्थ ।) प्रिये सागरिके,

शीतांशुमुखमन्तपने तव दृशौ पद्मानुकागै करौ

रम्भागर्भनिभं तवोरुयुगलं बाहू मृणालोपमौ ।

इत्याहृदकराम्बिलाङ्गि रममान्त्रिःशङ्कमालिङ्ग्य मा-

मङ्गानि त्वमनङ्गतापविधुराण्येष्वहि निर्वापय ॥’

इत्यादिना ‘इह तदप्यस्त्येव विम्बाधरे ॥’ इत्यनेन वासवदत्तया वत्सराज-  
भावस्य ज्ञातत्वात्क्रमान्तरमिति ॥

अथ संग्रहः—

### संग्रहः सामदानोक्तिर्

यथा रत्नावल्याम्—‘साधु वयस्य, साधु । इदं ते पारितोषिकं कटकं  
ददामि ।’ इत्याभ्यां सामदानाभ्यां विदूषकस्य सागरिकासमागमकारिणः संग्र-  
हात्संग्रह इति ॥

१. ‘भवति सागरिके, एष प्रियवयस्यस्त्वामेवोद्दिश्योत्कषानिर्भरं मन्त्रयति । तत्रिवे�-  
द्यामि तस्मै तवागमनम् ।’ इति च्छाया.

अथानुमानम्—

**अभ्युहो लिङ्गतोऽनुमा ।**

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—धिङ् मूर्ख, त्वत्कृत एवायमापि तो-  
ऽस्माकमनर्थः । कुतः ।

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानात्प्रतिदिनं

व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया ।

प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ

प्रकृष्टस्य प्रेमः स्वलितमविष्वद्यं हि भवति ॥

विदूषकः—भी वअस्स, वासवदत्ता किं करइस्सदि त्ति ण जाण ।

सागरिआ उण दुक्करं जीविम्मि त्ति तकेमि ।’ इत्यत्र प्रकृष्टप्रेमस्वलभ  
सागरिकानुरागजन्येन वासवदत्ताया मरणाभ्यूहनमनुमानमिति ॥

अथाधिवल्मी—

**अधिवल्मभिसंधिः**

यथा रत्नावल्याम्—‘काश्चनमाला—भैष्णिणि, इअं सा चित्तसा-  
लिआ । ता वसन्तअस्स सण्णं करेमि । (छोटिकां ददाति ।)’ इत्यादिना वास-  
वदत्ताकाश्चनमालाभ्यां सागरिकासुसङ्गतोपाभ्यां राजविदूषकयोरभिसंधी-  
यमानत्वाद्विवलमिति ॥

अथ तोटकम्—

**संरब्धं तोटकं वचः ॥ ४० ॥**

यथा रत्नावल्याम्—‘वासवदत्ता—(उपस्थित ।) अैज्जउत्त, जुन ग  
सरिसमिणम् । (उनः सरोपम् ।) अज्जउत्त, उड्डेहि । किं अज्जवि आहि नाईए  
सेवादुक्खमणुभवीअदि । कञ्चणमाले, एदेण जेव पासेण बन्धिअ आणेहि  
एण दुड्डवक्षणम् । एदं पि दुड्डकण्णअं अभगदो करेहि ।’ इत्यनेन वासवदत्ता-  
संरब्धवचसा सागरिकासमागमान्तराग्नेनानिग रामित । गां तोटकमुक्तम् ॥

यथा च वेणीसंहारे—

**‘प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्य शेषे निशाम्’**

१. ‘भो वयस्य, वासवदत्ता किं करिष्यतीति न जानामि । सागरिका पुनर्दुष्करं जी-  
विष्यतीति तर्कयामि ।’ इति च्छाया. २. ‘भैत्रि, इयं सा चित्रशालिका ।  
तद्वसन्तकस्य संज्ञां करोमि ।’ इति च्छाया. ३. ‘आर्यपुत्र, युक्तमिदं सदशमिदम् ।  
आर्यपुत्र, उत्तिष्ठ । किमयाप्याभिजाया: सेवादुःखमनुभूयते । काश्चनमाले, एतेनेव  
पाशेन बद्धानयैन दुष्टवाङ्मणम् । एतामपि दुष्टकन्यकामग्रतः कुरु ।’ इति च्छाया.

इत्यादिना

‘वृत्तायुधो यावदहं तावदन्यैः किमयुधैः ।’  
इत्यनेनान्योन्यं कर्णश्वत्याक्षोः संरब्धवचसा सेनाभेदकारिणा पाण्डववि-  
जयप्राप्त्याशान्वितं तोटकमिति ॥

ग्रन्थान्तरे तु—

तोटकस्यान्यथाभावं ब्रुवतेऽधिवलं तु भासः ।  
यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—देवि, एवमपि प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकः कि-  
विज्ञापयामि ।

आताप्रतामपनयामि विलक्ष एव  
लाक्षाकृतां चरणयोम्बव देवि मूर्खी ।  
कोपोपगगजनितां तु मुमेन्दुविभ्वे  
हर्तु क्षमो यदि परं करुणा मयि स्वाम् ॥’

संरब्धवचनं यत्तु तोटकं तदुदाहृतम् ॥ ४१ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—प्रिये वासवदते, प्रसीद प्रमीद । शास-  
वदत्ता—(अधृण धारयन्ता ।) अज्जउत्त, मा पूर्वं भण । अग्रमहून्माइ  
खु एदाइ अक्षवराइ ति ।’

यथा च वेणीसंहारे—‘राजा—अये मुन्दरक, कृष्णकुशलमङ्गगतम् ।  
पुरुषः—कुमलं सरीरमेत्केण । राजा—कि नम्य क्रिरीदिना हता भी-  
रेयाः, क्षत्तः सारथिः, भग्नो वा रथः । पुरुषः—देवै, ण भग्नो रहो ।  
भग्नो से मणोरहो । राजा—(संसन्धम् ।) कथम् ।’ इत्येवमादिना संरब्ध-  
वचसा तोटकमिति ॥

अथोद्वेगः—

उद्वेगोऽस्तिकृता भीतिः

यथा रत्नावल्याम्—‘सागरिका—(आत्मगतम् ।) कहं अक्षिदपुण्णोहि  
अत्तणो इच्छाएँ मरिउं पि ण पारीअदि ।’ इत्यनेन वासवदत्तातः सागरि-  
काया भयमित्युद्वेगः । यो हि यस्यापकारी स तस्यारिः ।

१. ‘आर्यपूत्र, मैवं भण । अन्यसंक्रान्तानि खल्वेतान्यक्षराणीति ।’ इति च्छाया.
२. ‘कुशलं शरीरमात्रकेण ।’ इति च्छाया.
३. ‘देव, न भग्नो रथः । भग्नोऽस्य मणोरथः ।’  
इति च्छाया.
४. ‘कथमकृतपुण्णेरात्मन इच्छया मर्तुमपि न पार्यते ।’ इति च्छाया.

यथा च वेणीसंहारे—‘सूतः—(कुत्वा सभयम् ।) कथमासन्न एवासौ कौ-  
रवराजपुत्रमहावनोत्पातमारुतो मारुतिरनुपलब्धसंज्ञश्च महाराजः । भवतु ।  
दूरमपहरामि स्यन्दनम् । कदाचिदयमनार्थो दुःशासन इवास्मिन्नप्यनार्थमा-  
चरिष्यति ।’ इत्यरिक्ता भीतिरुद्वेगः ॥

अथ संभ्रमः—

### शङ्खात्रासौ च संभ्रमः ।

यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—(पश्यन् ।) का उण एसा । (संसंभ्र-  
मम् ।) कथं देवी वासवदत्ता अत्ताणं वावादेदि । राजा—(संसंभ्रमसुपर्सर्वन् ।)  
कासौ कासौ ।’ इत्यनेन वासवदत्तावुद्घिगृहीतायाः सागरिकाया मरणश-  
ङ्क्या संभ्रम इति ।

यथा च वेणीसंहारे—‘नेष्ये कलक्लः ।) अश्वत्थामा—(संसंभ्रमम् ।)  
मातुल, मातुल, कष्टम् । एष भ्रातुः प्रतिज्ञाभङ्गभीरुः किरीटी समं शरवर्षेदु-  
र्योधनराघेयावभिद्रवति । सर्वथा पीतं शोणितं दुःशासनस्य भीमेन ।’ इति  
शङ्खा । तथा ‘प्रविश्य संचान्तः सप्रहारः सूतः—त्रायतां त्रायतां कुमारः ।’  
इति त्रासः । इत्येताभ्यां त्रासशङ्खाभ्यां दुःशासनद्रोणवधसूचकाभ्यां  
पाण्डवविजयप्राप्याशान्वितः संभ्रम इति ॥

अथाक्षेपः—

### गर्भवीजसमुद्देदादाक्षेपः परिकीर्तिः ॥ ४२ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—वयस्य, देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्दन-  
त्रोपायं पश्यामि ।’ पुनः क्रमान्तरे ‘सर्वथा देवीप्रसादनं प्रति निष्प्रत्याशी-  
भूताः स्मः ।’ पुनः ‘तत्किमिह स्थितेन देवीमेव गत्वा प्रसाद्यामि ।’ इत्यनेन  
देवीप्रसादायत्ता सागरिकासमागमसिद्धिरिति गर्भवीजोद्देदादाक्षेपः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘सुन्दरकः—अहवा किमेत्थ देव्व उआलहामि ।  
तस्य क्षु एदं गिब्भच्छिदविदुरवअणबीअस्स परिभूदपिदामहहिदोवदेस-

१. ‘का पुनरेषा । कथं देवी वासवदत्तात्मानं व्यापादयति ।’ इति च्छाया. २. ‘अ-  
भवा किमत्र दैवमुपालभामि । तस्य खल्वेतत्रिभूतिसतविदुरवचनबीजस्य परिभूतपिताम-  
हहितोपदेशाकुरस्य शकुनिप्रोत्साहनारुदमूलस्य कृतविषशशस्त्रिनो गावालीकेगग्रहणकुमु-  
मस्य फलं परिणमति ।’ इति च्छाया.

द्वुरस्स सउणिष्ठोच्छाहणारुद्भूतस्स कृतविममाहिणो पञ्चालीकेसणहणकु-  
सुमस्त फलं परिणमेदि ।’ इत्यनेन बीजमेव फलोन्मुखतयाक्षिप्यत इत्याक्षेपः ।

एतानि द्वादशा गर्भाङ्गानि प्राप्त्याशाप्रदर्शकत्वेनोपनिबन्धनीयानि । एषां  
च मध्येऽभूताहरणमार्गितोटकाविवलाक्षेपाणां प्राप्तान्यम् । इतरेषां यथासंभवं  
प्रयोग इति साङ्गो गर्भसंविरुक्तः ।

अथावमर्शीः—

क्रोधेनावमृशेत्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् ।

र्ग्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्शोऽङ्गसंग्रहः ॥ ४३ ॥

अवमर्शनमवमर्शः पर्यालोचनम् । तच्च क्रोधेन वा व्यसनाद्वा विलोभनेन वा  
भवितव्यम् । अनेनार्थेनेत्यवधारितैकान्तफलप्राप्त्यवसायात्मा गर्भसंयुद्धिन्नबी-  
जार्थसंबन्धो विमर्शोऽवमर्शः । यथा रत्नावलयां चतुर्थेऽङ्गविद्रवपर्यन्तो  
गमयनाप्तमन्या निरपायरत्नावलीप्राप्त्यवसायात्मा विमर्शो दर्शितः ।

यथा च वेणीमंहरे दुर्योधनरुपिराक्तभीमसेनागमपर्यन्तः

‘तीर्णं भीप्महोदधौ कथमपि द्रोणानले निर्वृते

कर्णीशीविषभेगिनि प्रशमिते शत्येऽपि याते दिवम् ।

भीमेन प्रियसाहसेन रभसादल्पावशेषे जये

सर्वं जीवितसंशयं वयममी वाचा समारोपिताः ॥’

इत्यत्र ‘म्बल्पावशेषे जये’ इत्यादिभिर्विजयप्रत्यर्थिसमस्तभीप्मादिमहारथवधा-  
दवधारितैकान्तविजयावमर्शनाद्वमर्शनं दर्शितमित्यवमर्शसंधिः ।

तस्याङ्गसंग्रहमाह—

तत्रापवादसंफेटौ विद्रवशक्तयः ।

द्युतिः प्रसङ्गश्छलनं व्यवसायो विरोधनम् ॥ ४४ ॥

प्रोचना विचलनमादानं च त्रयोदश ।

यथोदेशं लक्षणमाह—

दोषप्रस्त्यापवादः स्यात्

१. ‘सोऽवमर्श इति स्मृतः’ इति पाठः.

यथा रन्नावल्याम्—‘सुसङ्गता—सा खु तवस्सिणी भट्टिणीए उज्ज-  
इणि णीअदिति पवादं करिअ उवत्थिदे अद्धरत्ते ण जाणीअदि कहिंपि  
णीदिति । विदूषकः—(सोहेगम् !) अैदिणिणिणं क्षु कदं देवीए ।’ पुनः ।  
‘भो<sup>३</sup> वअस्य, मा खु अण्णधा संभावेहि । सा खु देवीए उज्जइणी  
पेसिदा । अदो अपिअं ति कहिदम् । राजा—अहो निरनुरोधा मयि  
देवी ।’ इत्यनेन वासवदत्तादोषप्रस्त्यापनादपवादः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘युधिष्ठिरः—पाञ्चालक, कच्छिदामादिता तस्य  
दुरात्मनः कौरवापसदस्य पदवी । पाञ्चालकः—न केवलं पदवी । स  
एव दुरात्मा देवीकेशपाशस्पर्शपातकप्रधानहेतुरुपलब्धः ।’ इति दुर्योधनस्य  
दोषप्रस्त्यापनादपवाद इति ।

अथ संफेटः—

### संफेटो रोपभाषणम् ।

यथा वेणीसंहारे—‘भोः कौरवराज, कृतं बन्धुनाशदर्शनमन्युना । मवं  
विषादं कृथाः । पर्यासाः पाण्डवाः समरायाहमसहाय इति ।

पञ्चानां गन्यमेऽमाकं यं सुयोधं सुयोधन ।

दंशितस्यातशक्तस्य तेन तेऽस्तु रणोत्सवः ॥

इत्थं श्रुत्वासूयात्मिकां निक्षिप्य कुमारयोर्द्दिष्टिमुक्तवान्धार्तराष्ट्रः—  
कर्णदुःशासनवधात्तुल्यवेव युवां मम ।

अप्रियोऽपि प्रियो योद्दुं त्वमेव प्रियसाहसः ॥

इत्युत्थाय च परस्परक्रोधाधिक्षेपरुपवाक्लहप्रस्तावितत्रोरसङ्गामौ—’ इत्य-  
नेन भीमदुर्योधनयोरन्योन्यरोपसंभाषणाद्विजयबीजान्वयेन संफेट इति ।

अथ विद्रवः—

### विद्रवो वधवन्धादिर्

१. ‘सा खलु तपस्विनी भट्टिन्योजयिणी नीयत इति प्रवादं कृत्वोपस्थितेऽर्धरात्रे न  
ज्ञायते कुत्रापि नीतेति ।’ इति च्छाया.
२. ‘अतिनिर्धृणं खलु कृतं देव्या ।’ इति च्छाया.
३. भो वयस्य, मा खल्वन्यथा संभावय । सा खलु देव्योजयिण्या प्रेषिता । अतोऽपि-  
र्यामति कथितम् ।’ इति च्छाया.

यथा छलितरामे—

‘येनावृत्य मुखानि साम पठतामत्यन्तमायासितं  
बाल्ये येन हत्क्षसूत्रवलयप्रत्यर्पणैः क्रीडितम् ।  
युध्माकं हृदयं स एष विशिखैरापूरितांस्थलो  
मृच्छिष्ठोग्नमःप्रवेशविवशो बद्धा लवो नीयते ॥’

यथा च रक्षावल्याम्—

‘हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव शिखैरर्चिषामादधानः  
सान्द्रोद्यानद्वामाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।  
कुर्वन्कीडामहीं प्रसंजलजलधरश्यामलं धूमपातै-  
रेष्व्योषार्तयोषिज्जन इह सहस्रैवेत्थितोऽन्तःपुरेऽग्निः ॥’

इत्यादि । पुनः । ‘वासवदत्ता—अंजउत्त, ण क्षु अहं अत्तणो कार-  
णादो भणामि । एसा मए णिग्यिणहिअआए संजदा सागरिआ विवजादि ।’  
इत्यनेन सागरिकावधवन्धाम्भिर्विद्रव इति ।

अथ द्रवः—

द्रवो गुरुतिरस्कृतिः ॥ ४९ ॥

यथोत्तरचरिते—

‘वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्तते  
सुन्दख्लीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महान्तो हि ते ।  
यानि त्रीण्यकुतोमुखान्यपि पदान्यासन्त्वरायोधने  
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥’

इत्यनेन लवो रामस्य गुरोस्तिरस्कारं कृतवानिति द्रवः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘युधिष्ठिरः—भगवन् कृष्णाग्रज सुभद्राभ्रातः,  
ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता क्षत्रियाणां न धर्मे  
रुदं सख्यं तदपि गणितं नानुजस्यार्जुनेन ।  
तुल्यः कामं भवतु भवतः शिष्ययोः स्तेहबन्धः  
कोऽयं पन्था यदसि विगुणो मन्दभाग्ये मर्यीत्यम् ॥’

१. ‘आर्यपुत्र, न खत्वहमात्मनः कारणाद्वाणामि । एषा मया निर्वृणहृदयश संयता  
सागरिका विपद्यते ।’ इति च्छाया.

इत्यादिना बलभद्रं गुरुं युधिष्ठिरस्त्रितवानिति द्रवः ।

अथ शक्तिः—

**विरोधशमनं शक्तिस्**

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—

सत्याजैः शपथैः प्रियेण वचसा चित्तानुवृत्त्याधिकं

वैलक्षण्ये परेण पादपतनैर्वक्यैः सखीनां मुहुः ।

प्रत्यासत्तिमुपागता न हि तथा देवी रुदत्या यथा

प्रक्षालयैव तैव वाप्ससलिलैः कोपोऽपनीतः स्वयम् ॥’

इत्यनेन सागरिकालाभविरोधिवासवदत्ताकोपशमनाच्छक्तिः ।

यथा चोत्तरचरिते लवः प्राह—

‘विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृतिघन-

स्तदौद्वृत्यं कापि व्रजति विनयः प्रहृयति माम् ।

अटित्यमिम्नद्युष्टे किमपि परवानस्मि यदि वा

महार्वतीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ॥’

अथ द्युतिः—

**तर्जनोद्देजने द्युतिः ।**

यथा वेणीमंहारे—‘एतच्च वचनमुपश्रुत्य रामानुजस्य सकलनिकुञ्जपूरि-  
ताशातिरिक्तमुच्छ्रान्तसलिलचरशतसंकुलं त्रासोद्वृत्तनकग्राहमालोऽच्य सरःम-  
लिलं भैरवं च गर्जित्वा कुमारवृकोदरेणाभिहितम् ।

जम्बेदोरमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां

मां दुःशासनकोण्णशोणितमुराक्षीबं रिपुं भाषमे ।

दर्पन्धो मधुकैटभद्रिषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे

मत्रासाकृपशो विहाय समरं पङ्केऽधुना लीयसे ॥’

इत्यादिना ‘त्यक्त्वोद्धितः सरभसम्’ इत्यनेन दुर्वचनजलावलोऽनाभ्यां  
दुर्योधनतर्जनोद्देजनकारिभ्यां पाण्डवविजयानुकूलदुर्योधनोत्थापनहेतुभ्यां  
भीमस्य द्युतिरुक्ता ।

अथ प्रसङ्गः—

गुरुकीर्तनं प्रसङ्गम्

यथा रत्नावल्याम्—‘देव, यासौ सिंहलेश्वरेण स्वदुहिता रत्नावली नामायुष्मती वासवदत्तां दग्धामुपश्रुत्य देवाय पूर्वप्रार्थिता सती प्रतिदत्ता।’ इत्यनेन रत्नावल्या लाभानुकूलाभिजनप्रकाशिना प्रसङ्गाद्गुरुकीर्तनेन प्रसङ्गः।

तथा मृच्छकटिकायाम्—‘चाण्डालकः—ऐसं सागलदत्तस्स मुओ अज्जविणअदत्तस्स णत् चालुदत्तो वावादिदुं वज्रडाणं णीआदि । एदेण किल गणिआ वसन्तसेणा सुवर्णलोभेण वावादिदुं ति । चारुदत्तः—

मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं य-  
त्सदसि निविडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तान् ।  
मम निधनदशायां वर्तमानस्य पापै-  
स्तदसद्वशमनुप्यैर्धुप्यते नोपणागाम् ॥’

इत्यनेन चारुदत्तवधाभ्युदयानुकूलं प्रसङ्गाद्गुरुर्मिनि प्रसङ्गः।

अथ छलनम्—

**छलनं चावमाननम् ॥ ४६ ॥**

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—अहो निरनुरोधा मयि देवी।’ इत्यनेन वासवदत्तयेष्टामपादनाद्वत्सराजस्यावमाननाच्छलनम् ।

यथा च रामाभ्युदये सीतायाः पग्न्यागेनात्रमाननाच्छलनमिनि ।

अथ व्यवसायः—

**व्यवसायः स्वशत्त्युक्तिः**

यथा रत्नावल्याम्—‘ऐन्द्रजालिकः—

किं धरणीए मिङ्क्लो आआसे महिहरो जले जलणो ।

मञ्जण्हम्मि पओसो दाविज्जउ देहि आणत्तिम् ॥

अहवा किं बहुणा जन्मिणे ।

१. ‘ऐसं सागरदत्तस्य सुत आर्थविनयदत्तस्य नसा चारुदत्तो व्यापादयितु वध्यस्थानं नीयते । एतेन किल गणिका वसन्तसेणा सुवर्णलोभेण व्यापादितेनि।’ इति च्याया.

२. ‘किं धरणां सुगाङ्क आकाशे महीधरो जले ज्वलनः ।

मध्याहे प्रदोषो दृश्यतां देखाज्ञसिम् ॥

अथवा किं बहुना जलिपतेन ।

मम प्रतिज्ञैषा भणामि हृदयेन यद्वाज्ञसि द्रष्टुम् ।

तत्ते दर्शयामि स्फुरं गुरोमेत्रप्रभावेण ॥’ इति च्याया.

मञ्ज पहणा एसा भणामि हिअएण जं महसि दहुम् ।

तं ते दावेमि फुडं गुरुणो मन्तप्पहावेण ॥'

इत्यनेनैन्द्रजालिको मिथ्याग्रिसंभ्रमोत्थापनेन वत्सराजस्य हृदयस्थसाग-  
रिकादर्शनानुकूलं स्वशक्तिमाविष्कृतवान् ।

यथा च वेणीसंहारे—

‘नूनं तेनाद्य वीरेण प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा ।

बध्यते केशपाशस्ते स चास्याकर्षणे क्षमः ॥’

इत्यनेन युधिष्ठिरः स्वदण्डशक्तिमाविष्करोति ।

अथ विरोधनम्—

संरब्धानां विरोधनम् ।

यथा वेणीसंहारे—‘राजा—रे रे मरुत्तनय, किमेवं वृद्धस्य राजः  
पुरतो निन्दितव्यमात्मकर्म श्वावसे । अपि च ।

कृष्टा केशेषु भार्या तव तव च पशोस्तस्य राजस्तयोर्वा

प्रत्यक्षं भूपतीनां मम भुवनपतेराज्ञया द्यूतदासी ।

अस्मिन्वैरानुवन्धे तव किमपकृतं तैर्हता ये नरेन्द्रा

चाहोर्वीर्यातिसारद्रविणगुरुमदं मामजित्वैव दर्पः ॥

(भीमः क्रोधं नाटयति ।) अर्जुनः—आर्य, प्रसीद । किमत्र क्रोधेन ।

अप्रियाणि करोत्येष वाचा शक्तो न कर्मणा ।

हतभ्रातृशतो दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥

भीमः—अरे भरतकुलकलङ्क,

अद्यैव किं न विसृजेयमहं भवन्तं

दुःशासनानुगमनाय कटुप्रलापिन् ।

विघ्नं गुरु न कुरुतो यदि मत्कराग्र-

निर्भद्यमानरणिताम्भिनि ते शरीरे ॥

अन्यच्च मूढ,

१. ‘संरम्भोक्ति’ इति पाठः.

शोकं ख्रीवन्नयनसलिलैर्यत्परित्याजितोऽसि  
भ्रातुर्वक्षः स्थलविदलने यच्च माक्षीकृतोऽसि ।  
आसीदेतत्त्वं कुनृपतेः कारणं जीवितस्य  
कुद्धे युप्मत्कुलकमलिनीकुञ्जे भीमसेने ॥

राजा—दुरात्मन् भरतकुलाभसद् पाण्डवपशो, नाहं भवनिव विक-  
त्थनाप्रगल्मः । किं तु ।

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।  
मद्भद्राभिन्नवक्षोऽस्मिवेणिकाभङ्गभीषणम् ॥'

इत्यादिना संरब्धयोर्भीमदुर्योधनयोः स्वशक्तयुक्तिर्विरोधनमिति ।

अथ प्ररोचना—

सिद्धामत्रणतो भाविदर्शिका स्यात्प्रोचना ॥ ४७ ॥  
यथा वेणीसंहरे—‘पाञ्चालकः—अहं च देवेन चक्रपाणिना’ इत्युग्र-  
क्रम्य ‘कृतं सद्देहेन ।  
पूर्यन्तां सलिलेन रद्धकलशा राज्याभिपेकाय ते  
कृष्णात्यन्तचिरोज्जिते च कबरीवन्धे करोतु क्षणम् ।  
रामे शातकुठारभासुरकरे क्षत्रद्वमोच्छेदिनि  
क्रोधान्धे च वृकोदरे परिपतत्याजौ कुतः संशयः ॥’  
इत्यादिना ‘मङ्गलानि कर्तुमाज्ञापयति देवो युधिष्ठिरः ।’ इत्यन्तेन द्रौपदीके-  
शसंयमनयुधिष्ठिरराज्याभिषेकयोर्भीविनोरपि सिद्धत्वेन दर्शिका प्ररोचनेति ।

अथ विचलनम्—

विकत्थना विचलनम्  
यथा वेणीसंहरे—‘भीमः—तात, अम्ब,  
सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते  
तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।  
रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य  
प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डवोऽयम् ॥

अपि च । तात,

नर्गिनशोगकौरव्यं क्षीबो दुःशामनामृजा ।

भङ्ग मुगेश्वनस्मोर्नेभीमोऽयं शिरसाञ्चति ॥'

इत्यनेन विजयवीजानुगतस्वगुणाविप्करणाद्विचलनमिति ।

यथा च रत्नावल्याम्—‘यौगंधरायणः—

देव्या मद्वचनाद्यथाभ्युपगतः पत्युर्वियोगस्तदा

सा देवस्य कलत्रसंवटनया दुःखं मया स्थापिता ।

तस्याः प्रीतिमयं करिष्यति जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः

सत्यं दर्शयितुं तथापि वदनं शक्नोमि नो लज्जया ॥’

इत्यनेनान्यपरेणापि यौगंधरायणेन ‘मया जगत्स्वामित्वानुबन्धी कन्यान्नभो वत्सराजस्य कृतः ।’ इति स्वगुणानुकीर्तनाद्विचलनमिति ।

अथादानम्—

आदानं कार्यसंग्रहः ।

यथा वेणीसंहारे—‘भीमः—ननु भोः समन्तपञ्चकसंचारिणः,

रसो नाहं न भूतं रिपुरुषिरजलाष्टविताङ्गः प्रकामं

निस्तीर्णोसप्रतिज्ञाजलनिधिंगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि ।

भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिवाद्यग्नेषोपाः कृतं व-

खासेनानेन लीनैहतकरितुरगान्तर्हैतेरास्येते यत् ॥’

इत्यनेन समस्तरिपुवधकार्यस्य संगृहीतत्वादादानम् ।

यथा च रत्नावल्याम्—‘सागरिका—(दिशोऽवलोक्य) दिउंगिआ समन्नादो पञ्जलिदो भअवं हुअवहो अज करिस्दि दुःखावसाणम् ।’ इत्यनेनान्यपरेणापि दुःखावसानकार्यस्य संग्रहादानम् । यथा च ‘जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः’ इति दर्शितमेवम् । इत्येतानि त्रयोदशावमर्शीङ्गानि । तत्रैषामपवादशक्तिव्यवसायप्ररोचनादानानि प्रधानानीति ।

अथ निर्वहणसंधिः—

वीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् ॥ ४८ ॥

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ।

१. ‘दिष्या समन्तात्प्रज्वलितो भगवान्हुतवहोऽयं करिष्यति दुःखावसानम् ।’ इति च्छाया.

यथा वेणीसंहारे—‘कञ्जुकी—(उपश्ल सहर्षम् ।) महाराज, वर्धसे वर्धसे । अयं खलु कुमारभीमसेनः सुयोधनक्षतजारुणीकृतसकलशरीरो दुल-क्षव्यक्तिः ।’ इत्यादिना द्रौपदीकेशसंयमनादिमुखसंध्यादिबीजानां निजनिजस्थानोपक्षिसानामेकार्थतया योजनम् ।

यथा च रत्नावल्यां सागरिकारत्नावलीवसुभूतिवाभ्रव्यादीनामर्थानां मुखसंध्यादिषु प्रकीर्णानां वत्सराजैककार्यार्थेत्वम् ‘वसुभूतिः—(सागरिकानिर्वर्ण्यार्थार्थ ।) बाभ्रव्य, सुमट्टरीयं राजपुच्छा ।’ इत्यादिना दशिनमिनि निर्वहणसंधिः ।

अथ तदङ्गानि—

संथिर्विवोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणम् ॥ ४९ ॥

प्रसादानन्दसमयाः कृतिभाषोपग्रहनाः ।

पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश ॥ ५० ॥

यथोद्देशं लक्षणमाह—

संथिर्वीजोपगमनं

यथा रत्नावल्याम्—‘वसुभूतिः—बाभ्रव्य, सुमट्टरीयं राजपुच्छा । बा-  
भ्रव्यः—ममार्घेवमेव प्रतिभाति ।’ इत्यनेन नायिकावीजोपगमात्संविरिति ।

यथा च वेणीमंहारे—‘भीमः—भवति यज्ञवेदिमंभवे, स्मरति भवती  
यत्तमयोक्तम् ।

चञ्चद्गुजभ्रमितचण्डगदभिवात्-

संचूर्णितोरुगलस्य सुयोधनस्य ।

स्थानाऽप्यनेनशोणिनशोणाणि-

रुतंसंयिष्यति कर्चांस्तव देवि भीमः ॥’

इत्यनेन सुखोपक्षिसस्य वीजस्य पुनरुपगमात्संविरिति ।

अथ विवोधः—

विवोधः कार्यमार्गणम् ।

यथा रत्नावल्याम्—‘वसुभूतिः—(निरूप्य ।) देव, कुत इयं कन्यका ।  
राजा—देवी जानाति । वासवदत्ता—अंजउत्त, एसा सागरादो पावि-

१. ‘आर्थपुत्र, एषा सागरात्रासेति भणिल्वामात्यर्थांधरायणेन मम हस्ते निहिता ।  
अत एव सागरिकेति शब्दते ।’ इति च्छाया.

अति भणिअ अमच्चजोगन्धराअणेण मम हत्थे णिहिदा । अदो ज्ञेव सा-  
गरिअति सदावीअदि । राजा—(आत्मगतम् ।) यौगंधरायणेन न्यस्ता ।  
कथमसौ ममनिवेद्य करिष्यति ।' इत्यनेन रत्नावलीलक्षणकार्यान्वेषणाद्विबोधः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘भीमः—मुञ्चतु मुञ्चतु मामार्यः क्षणमेकम् ।  
युधिष्ठिरः—किमपरमवशिष्टम् । भीमः—सुमहदवशिष्टम् । संयमयामि  
तावदनेन दुःशासनशोणितोक्षितेन पाणिना पाञ्चाल्या दुःशासनावकृष्टं  
केशहस्तम् । युधिष्ठिरः—गच्छतु भवान् । अनुभवतु तपस्विनी वेणीसं-  
हारम् ।' इत्यनेन केशसंयमनकार्यस्यान्वेषणाद्विबोध इति ।

अथ ग्रथनम्—

### ग्रथनं तदुपक्षेपो

यथा रत्नावल्याम्—‘यौगंधरायणः—देव, क्षम्यतां यद्वेवस्यानिवेद्य  
मर्यैतत्कृतम् ।' इत्यनेन वत्सराजस्य रत्नावलीप्रापणकार्योपक्षेपाद्वयनम् ।

यथा च वेणीसंहारे—‘भीमः—पाञ्चालि, न खलु मयि जीवति मं-  
हर्तव्या दुःशासनविलुलिता वेणिरात्मपाणिना । तिष्ठतु तिष्ठतु । स्वयमेवाहं  
संहरामि ।' इत्यनेन द्रौपदीकेशसंयमनकार्यस्योपक्षेपाद्वयनम् ।

अथ निर्णयः—

### ५ नुभूताख्या तु निर्णयः ॥ ५१ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘यौगंधरायणः—(कृताङ्गिः ।) देव, श्रूयताम्  
इयं सिंहलेश्वरदुहिता सिद्धोद्देवोनोपदिष्टा, योऽस्याः पाणिग्रहीष्यति स मा-  
र्वभौमो राजा भविष्यति । तत्प्रत्ययादस्माभिः स्वाम्यर्थं बहुशः प्रार्थ्यमा-  
नापि सिंहलेश्वरेण देव्या वासवदत्तायाश्चित्तखेदं परिहरता यदा न दत्ता,  
तदा लावणिके देवी दग्धेति प्रसिद्धिमुत्पाद्य तदन्तिकं बाभ्रव्यः प्रहितः ।'  
इत्यनेन यौगंधरायणः स्वानुभूतमर्थं स्वायापितवानिति निर्णयः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘भीमः—देव देव अजातशत्रो, काद्यापि दुर्यो-  
धनहतकः । मया हि तस्य दुरात्मनः

भूमौ क्षिष्वा शरीरं निहितमिदमसक्चन्दनाभं निजाङ्गे  
लक्ष्मीरार्ये निषिक्ता चतुरुदधिपयःसीमया सार्धमुव्या ।

भृत्या मित्राणि योधः कुरुकुलमखिलं दग्धमेतद्रणाग्नौ  
नामैकं यद्वीषि क्षितिप तद्भुना भार्तराष्ट्रस्य शेषम् ॥’  
इत्यनेन स्वानुभूतार्थकथनाक्षिण्य इति ।

अथ परिभाषणम्—

### परिभाषा मिथो जल्पः

यथा रत्नावल्याम्—‘रत्नावली—(आत्मगतम् ।) कंआवराहा देवीए  
ण सङ्कुणोमि मुहं दंसिद्धम् । वासवदत्ता—(सासम् । उन्नर्वाहू प्रसार्य ।)  
ऐहि अयि णिद्धुरे, इदाणीं पि बन्धुसिणेहं दंसेहि । (अपवार्य ।) अज्जउत्त,  
लज्जामि क्खु अहं इमिणा णिसंसत्तणेण । ता लहुं अवणेहि से बन्धणम् ।  
राजा—यथाह देवी । (बन्धनमपनयति ।) वासवदत्ता—(वसुभूति निर्द-  
श्य ।) अङ्ग, अमच्चयोगन्धरायणेण दुर्जनीकदत्ति जेण जाणन्तेण वि  
णाचक्षिद्धम् ।’ इत्यनेनान्योन्यवचनात्परिभाषणम् ।

यथा च वेणीसंहरे—‘भीमः—कृष्ण येनासि राजां सदसि नृपशुना  
तेन दुःशासनेन ।’ इत्यादिना ‘कासौ भानुमती योपहसति पाण्डवदा-  
रान् ।’ इत्यन्तेन भाषणात्परिभाषणम् ।

अथ प्रसादः—

### प्रसादः पर्युपासनम् ।

यथा रत्नावल्याम्—‘देव, क्षम्यताम् ।’ इत्यादि दर्शितम् ।

यथा च वेणीसंहरे—‘भीमः—(द्रौपदीमुपस्थित ।) देवि पाञ्चालराज-  
तनये, दिशा वर्धसे रिपुकुलक्षयेन ।’ इत्यनेन द्रौपद्या भीमसेनाराघितत्वा-  
प्रसाद इति ।

अथानन्दः—

### आनन्दो वाञ्छितावासिः

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—यथाह देवी । (रत्नावलीं गृह्णाति ।)’

१. ‘कृतापराधा देव्या न शक्नोमि मुखं दर्शयितुम् ।’ इति च्छाया. २. ‘ऐहि  
अयि निष्ठुरे, इदानीमपि बन्धुलेहं दर्शय । आर्यपुत्र, लज्जे खल्वहमनेन वृशंसलेन ।  
तल्लव्यपनयास्या बन्धनम् ।’ इति च्छाया. ३. ‘आर्य, अमात्ययौगंधरायणेन दुर्जनी-  
कृतास्मि येन जानतापि नाचक्षितम् ।’ इति च्छाया.

यथा च वेणीसंहारे—‘द्वौपदी—ज्ञाध, विसुमरिदिति एदं वावारम् । ज्ञाधस्स प्पसादेण मुणो सिक्षित्वस्सम् । (केशान्वप्राति ।)’ इत्याभ्यां प्रार्थना रत्नावलीप्राप्तिकेशसंयमनयोर्वित्सराजद्वौपदीभ्यां प्राप्तत्वादानन्दः ।

अथ समयः—

समयो दुःखनिर्गमः ॥ ५२ ॥

यथा रत्नावल्याम्—‘वासवदत्ता—(रत्नावलीमालिक्षण ।) सैमस्सस्स समस्सम वहिणिए ।’ इत्यनेन भगिन्योरन्योन्यसमागमेन दुःखनिर्गमात्समयः ।

यथा च वेणीसंहारे—‘भगवन्, कुतस्तस्य विजयादन्यद्यस्य भगवान्पुराणपुरुषः स्वयमेव नारायणो मङ्गलान्याशास्ते ।

कृतगुरुमहदादिक्षोभसंभूतमूर्ति  
गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।

अजममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वापि न त्वां

भवति जगति दुःखी किं पुनर्दैव दृष्ट्वा ॥’

इत्यनेन युधिष्ठिरदुःखापगमं दर्शयति ।

अथ कृतिः—

कृतिर्लब्धार्थशमनं

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—को देव्याः प्रसादं न क्व ह स्यते । वासवदत्ता—अैज्जउत्त, दूरे से मादुउलम् । ता तथा करेतु जथा बन्धु-अणं न सुमरेदि ।’ इत्यन्योन्यवच्चपा लब्धायां रत्नावल्यां राज्ञः सुशिष्टृय उपशमनात्कृतिरिति ।

यथा च वेणीसंहारे—‘कृष्णः—एते खलु भगवन्तो यामवाल्मीकि—’ इत्यादिना ‘अभिषेकमारब्धवन्तस्तिष्ठन्ति ।’ इत्यनेन प्राप्तराज्यस्याभिषेकमङ्गलैः स्थीरीकरणं कृतिः ।

अथ भाषणम्—

मानाद्यासिंश्च भाषणम् ।

१. ‘नाथ, विस्मृतास्म्येतं व्यापारम् । नाथस्य प्रसादेन पुनः शिक्षित्यामि ।’ इति च्छाया. २. ‘समाश्रसिहि समाश्रसिहि भगिनिके ।’ इति च्छाया. ३. ‘आर्यपुत्र, दूरेऽस्या मातृकुलम् । तत्था कुरुष्व यथा बन्धुजनं न स्मरति ।’ इति च्छाया.

यथा रत्नावल्याम्—‘राजा—अतःपरमपि प्रियमस्ति ।  
यातो विक्रमबाहुरात्मसमतां प्रासेयमुर्वीतले  
सारं सागरिका सप्तागरमहीप्राप्त्येकहेतुः प्रिया ।  
देवी प्रीतिमुपागता च भगिनीलाभाजिताः कोशलाः  
किं नास्ति त्वयि सत्यमात्यवृषभे यस्मै करोमि मृहाम् ॥’

इत्यनेन कार्यार्थमानादिलाभाद्वाषणमिति ।

अथ पूर्वभावोपगृहने—

कार्यदृष्ट्यद्वृतप्रासी पूर्वभावोपगृहने ॥ ५३ ॥

कार्यदर्शनं पूर्वभावः । यथा रत्नावल्याम्—‘यौगंधरायणः—एवं  
विज्ञाय भगिन्याः संप्रति करणीये देवी प्रमाणम् । वासवदत्ता—कुँडं ज्वेव  
किं ण भणेसि । पडिवाएहि से रअणमालं त्ति ।’ इत्यनेन ‘वत्सराजाय  
रत्नावली दीयताम् ।’ इति कार्यस्य यौगंधरायणाभिग्रायानुप्रविष्टस्य वासव-  
दत्तया दर्शनात्पूर्वभाव इति ।

अद्भुतप्राप्तिरूपगृहनम् । यथा वेणीसंहारे—‘(नेपथ्यै ।) महासमरानल-  
दग्धवशेषाय स्वस्ति भवते राजन्यलोकाय ।

क्रोधान्वैर्यस्य मोक्षात्क्षतनरपतिभिः पाण्डुपुत्रैः कृतानि  
प्रत्याशं मुक्तकेशान्यनुदिनमधुना पार्थिवान्तःपुराणि ।  
कृष्णायाः केशपाशः कुपितयमसखो धूमकेतुः कुरुणां

दिष्टच्चा बद्धः प्रजानां विरमतु निधनं स्वस्ति राजन्यकेभ्यः ॥  
युधिष्ठिरः—देवि, एष ते मूर्धजानां संहारोऽभिनन्दितो नभस्तलचा-  
रिणा सिद्धननेन ।’ इत्येतेनाद्भुतार्थप्राप्तिरूपगृहनमिति । लब्धार्थशमनात्कृ-  
तिरपि भवति ।

अथ काव्यसंहारः—

वराप्तिः काव्यसंहारः

यथा—‘किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ।’ इत्यनेन काव्यार्थसंहरणात्का-  
व्यसंहार इति ।

१. ‘स्फुटमेव किं न भणसि । प्रतिपादयास्मै रत्नमालमिति ।’ इति च्छाया.

अथ प्रशस्तिः—

**प्रशस्तिः शुभशंसनम् ।**

यथा वेणीसंहारे—‘प्रीततरश्चेद्वान्, तदिदमेवमस्तु ।

अकृपणमतिः कामं जीव्याज्जनः पुरुषायुषं

भवतु भगवद्कृत्त्वैतं विना पुरुषोत्तमे ।

कलितभुवनो विद्वद्दन्वुर्गुणेषु विशेषवि-

त्सततसुकृती भूयाद्वृपः प्रसाधितमण्डः ॥

इति शुभशंसनात्प्रशस्तिः । इत्येतानि चतुर्दश निर्वहणाङ्गानि । एवं  
चतुर्षश्चमनिनाः पञ्चसंधयः प्रतिपादिताः ।

षट्प्रकारं चाङ्गानां प्रयोजनमित्याह—

उक्ताङ्गानां चतुःषष्ठिः षोडा चैषां प्रयोजनम् ॥ ५४ ॥

कानि पुनस्तानि षट्प्रयोजनानि—

इष्टस्यार्थस्य रचना गोप्यगुमिः प्रकाशनम् ।

रागः प्रयोगस्यार्थर्थं वृत्तान्तस्यानुपक्षयः ॥ ५५ ॥

विवक्षितार्थनिवन्धनं गोप्यार्थगोपनं प्रकाश्यार्थप्रकाशनमभिनेयरागवृ  
द्धिश्चमत्कारित्वं च काव्यस्येतिवृत्तस्य विस्तर इत्यङ्गैः षट्प्रयोजनानि सं-  
पाद्यन्त इति ।

पुनर्वस्तुविभागमाह—

द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः ।

सूच्यमेव भवेत्किञ्चिद्वृश्यश्रव्यमथापरम् ॥ ५६ ॥

कीटकमूच्यं कीटगृहश्यश्रव्यमित्याह—

नीरसोऽनुचितस्तत्र संमूच्यो वस्तुविस्तरः ।

हृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः ॥ ५७ ॥

सूच्यस्य प्रतिपादनप्रकारमाह—

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।

विष्कम्भचूलिकाङ्गास्याङ्गावतारप्रवेशकैः ॥ ५८ ॥

तत्र विष्कम्भः—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निर्दशकः ।

संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मःयपात्रप्रयोजितः ॥ ५९ ॥

अतीतानां भाविनां च कथावयवानां ज्ञापको मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा  
पात्राभ्यां प्रयोजितो विष्कम्भक इति ।

स द्विविधः—शुद्धः संकीर्णश्वेत्याह—

एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णे नीचमध्यमैः ।

एकेन द्वाभ्यां वा मध्यमपात्राभ्यां शुद्धो भवति । मध्यमाभ्यमपात्रैर्यु-  
गपत्रयोजितः संकीर्ण इति ।

अथ प्रवेशकः—

तद्वेवानुदात्तोत्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ॥ ६० ॥

प्रवेशोऽङ्गद्यस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ।

तद्वेवेति भूतभिष्यदर्थज्ञापकत्वमतिदिश्यते । अनुदात्तोत्त्या नीचेन  
नीचैर्वा पात्रैः प्रयोजित इति विष्कम्भतःनापात्रः । अङ्गद्यस्यान्त इति  
प्रथमाङ्के प्रतिपेध इति ।

अथ चूलिका—

अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना ॥ ६१ ॥

नेपथ्यपात्रेणार्थमूच्नं चूलिका । यथोत्तर्चरिते द्वितीयाङ्गस्यादौ—  
(नेपथ्य॑) स्वागतं तपोथनायाः । (ततः प्रविशति तपोथना॑)’ इति नेपथ्य-  
पात्रेण वासन्तिक्यात्रेयीमूच्नाचूलिका ।

यथा वा वीरचरिते चतुर्थाङ्गस्यादौ—(नेपथ्य॑) भो भो वैमानिकाः,  
प्रवर्त्यन्तां प्रवर्त्यन्तां मङ्गलानि ।

कृशाश्वान्तेवासी नयति भगवान्कौशिकमुनिः

सहस्रांशोर्वशो जगति विजयि क्षत्रमधुना ।

विनेता क्षत्रोर्जगदभयदानव्रतधरः

शरण्यो लोकानां दिनकरकुलेन्दुर्विजयते ॥’

इत्यत्र नेपथ्यपात्रैर्देवै रामेण परशुरामो जित इति सूचनाचूलिका ।

अथाङ्गास्यम्—

अङ्गान्तपात्रैरङ्गास्यं छिन्नाङ्गस्यार्थसूचनात् ।

१. ‘अन्ते’ इति पाठः २. ‘अन्तर्जवनिका’ इति पाठः.

अङ्कान्त एव पात्रमङ्कान्तपात्रम् । तेन विश्लिष्टस्योत्तराङ्कमुखस्य सूचनं तद्वेगोत्तराङ्कावतारोऽङ्कास्यमिति । यथा वीरचरिते द्वितीयाङ्कान्ते—‘प्रविश्य ।’ सुमञ्च्रः—भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ भवतः सर्वागवानाहयतः । इतरे—क भगवन्तौ । सुमञ्च्रः—महाराजदशरथस्यान्तिके । इतरे—तदनुरोधात्तत्रैव गच्छामः ।’ इत्यङ्कसमाप्तौ ‘(ततः प्रविशन्त्युपविश्वासिष्ठविश्वामित्रपरगुरामाः।)’ इत्यत्र पूर्वाङ्कान्त एव प्रविष्टेनसुमञ्च्रपात्रेण शतानन्दजनककथार्थविच्छेद उत्तराङ्कमुखसूचनादङ्कास्यमिति ।

• अथाङ्कावतारः—

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पांतोऽङ्कस्याविभागतः ॥ ६२ ॥

एभिः संसूचयेत्सूच्यं दृश्यमङ्कैः प्रदर्शयेत् ।

यत्र प्रविष्टपात्रेण सूचितमेव पूर्वाङ्काविच्छिन्नार्थतयैवाङ्कान्तरमापत्तिप्रवेशकविपक्भकादिशून्यं सोऽङ्कावतारः । यथा मानविकाशिमित्रे प्रथमाङ्कान्ते—‘विदूषकः—तेण हि दुवेवि देवीए पेक्खवागेहं गदुअ सङ्गीदोवअरणं करित तत्यभवदो दूदं विसज्जेध । अथवा मृदङ्कसद्वो जेव णं उत्थावयिम्मदि।’ इत्युपक्रमे मृदङ्कशब्दश्रवणादनन्तरं सर्वाण्येव पात्राणि प्रथमाङ्कप्रकान्तपात्रसंकान्तिदर्शनं द्वितीयाङ्कादावारभन्त इति प्रथमाङ्कार्थाविच्छेदैव द्वितीयाङ्कस्यावतरणादङ्कावतार इति ।

पुनर्निधा वस्तुविभागमाह—

नाव्यधर्मपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते ॥ ६३ ॥

केन प्रकारेण त्रैवं तदाह—

सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव च ।

तत्र ।

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम् ॥ ६४ ॥

सर्वश्राव्यं यद्वस्तु तत्प्रकाशमित्युच्यते । यत्तु सर्वस्याश्राव्यं तत्स्वगतमिति शब्दाभिधेयम् ।

१. ‘पात्राङ्कस्य’ इति पाठः २. तेन हि द्वावपि देव्याः प्रेक्षागेहं गत्वा संगीतकोपकरणं कृत्वा तत्रभवतो दृतं विसर्जयतम् । अथवा मृदङ्कशब्द एवैनसुत्थापयिष्यति । इति च्छाया.

नियतश्राव्यमाह—

द्विधान्यन्नाद्यधर्मार्थ्यं जनान्तमपवारितम् ।

अन्यतु नियतश्राव्यं द्विप्रकारं जनान्तिकापवारितमेदेन ।

तत्र जनान्तिकमाह—

त्रिपताकाकरणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ॥ ६५ ॥

अन्योन्यामब्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।

यस्य न श्राव्यं तस्यान्तरं ऊर्ध्वसर्वाङ्गुलं तज्जनान्तिकम् । अन्यां करं  
कृत्वान्येन सह यमच्युते तज्जनान्तिकमिति ।

अथापवारितम्—

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम् ॥ ६६ ॥

परावृत्त्यान्यस्य रहस्यकथ्यनमपवारितमिति ।

नाद्यधर्मप्रसङ्गादाकाशभाषितमाह—

किं ब्रवीप्येवमित्यादि विनापात्रं ब्रवीति यत् ।

श्रुतेवानुकमप्येकस्तस्यादाकाशभाषितम् ॥ ६७ ॥

स्पष्टार्थः ।

अन्यान्यपि नाद्यधर्माणि प्रथमकल्पादीनि कैश्चिदुदाहृतानि । तेषाम-  
भारतीयत्वान्नाममालाप्रसिद्धानां केषांचिदेशभाषापात्मकत्वान्नाद्यधर्मत्वाभावा-  
लक्षणं नोक्तमित्युपसंहरति—

इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजातं

रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथां च ।

आसूत्रयेत्तदनु नेत्ररसानुगुण्या-

चित्रां कथामुचितचारुवचःप्रपञ्चैः ॥ ६८ ॥

वस्तुविभेदजातं वस्तु वर्णनीयं तस्य विभेदजातं नामभेदाः । रामाय-  
णादि बृहत्कथां च गुणाद्यनिर्मितां विभाव्य आलोच्य । तदनु एतदुत्त-  
रम् । नेत्रिति । नेता वक्ष्यमाणलक्षणः, रसाश्च तेषामानुगुण्याच्चित्रां चि-  
त्ररूपां कथामास्यायिकाम् । चारुणि यानि वचांसि तेषां प्रपञ्चविस्तारैरा-  
सूत्रयेदनुग्रथयेत् । तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्—

‘चाणक्यनामा तेनाथ शक्यलगृहे रहः ।  
 कृत्यां विधाय सहसा सपुत्रो निहतो नृपः ॥  
 योगानन्दयशः शेषे पूर्वनन्दसुतस्तः ।  
 चन्द्रगुप्तः कृतो राजा चाणक्येन महोजसा ॥’

इति वृहत्कथायां सूचितं श्रीरामायणोक्तं रामकथादि ज्ञेयम् ॥

इति श्रीविष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोके  
 प्रथमः प्रकाशः समाप्तः ।

द्वितीयः प्रकाशः ।

रूपकाणामन्योन्यं भेदसिद्धये वस्तुभेदं प्राप्तिमेषु नायकमेदः  
प्रतिपाद्यते—

नेता विनीतो मधुरस्त्वागी दक्षः प्रियंवदः ।  
रक्तलोकः शुचिर्वाञ्छी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥ १ ॥  
बुद्धयुत्साहमृतप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।  
शुरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च प्राप्तिकः ॥ २ ॥

नेता नायको विनयादिगुणसंपन्नो भवतीति ।  
तत्र विनीतः । यथा वीरचरिते—

‘यद्वावादिभिरुपासितवन्द्यपादे  
विनायतपोत्रननिनौ तपतां वरिष्ठे ।  
दैवात्मतस्त्वयि मया विनयापचार-  
स्तत्र प्रसीद भगवन्नयमङ्गलित्से ॥’

मधुरः प्रियदर्शनः । यथा तत्रैव—

‘राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य सदृशां समुद्रहन् ।  
अप्रतर्क्षयगुणरामणीयकः सर्वयैव हृदयंगमोऽसि मे ॥’  
त्वागी सर्वस्वदायकः । यथा—

‘त्वं कर्णः शिविर्मासं जीवं जीमूतवाहनः ।  
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥’

दक्षः क्षिप्रकारी । यथा वीरचरिते—

‘स्फूर्जद्रज्जसहस्रनिर्भितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो  
रामस्य त्रिपुरान्तकृद्विषदां तेजोभिरिद्धं धनुः ।  
गुण्डारः कलभेन यद्वदन्त्ले वत्सेन दोर्दण्डक-  
स्तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुणं कृष्टं च भग्नं च तत् ॥’

प्रियंवदः प्रियभाषी । यथा तत्रैव—

‘उत्पत्तिर्जमदग्नितः स भगवान्देवः पिनाकी गुरु-  
वीर्यं यत्तु न तद्विरां पथि ननु व्यक्तं हि तत्कर्मभिः ।  
त्वागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्ब्योजदानावधिः  
सत्यब्रह्मतपोनिधेभर्गवतः किं वा न लोकोत्तरम् ॥’

रक्तलोकः । यथा तत्रैव—

‘त्रय्याखाता यस्तवायं तनूज-  
स्तेनाद्यैव स्वामिनस्ते प्रसादात् ।  
राजनवन्तो रामभद्रेण राजा  
लब्धसेमाः पूर्णकामाश्रगमः ॥’

एवं शौचादिप्वप्युदाहार्यम् । तत्र शौचं नाम मनोनैर्मल्यादिना कामा-  
द्यनभूतत्वम् । यथा रघै—

‘का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते ।  
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूनां मनः परखीविमुखप्रवृत्ति ॥’

वाङ्मी । यथा हनुमन्त्राटके—

‘ब्राह्मोर्बलं न विदितं न च कार्मुकस्य  
त्रैयम्बकस्य तनिमा तत एष दोषः ।  
तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्य  
दिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरुणाम् ॥’

स्तूपवंशो यथा—

‘ये चत्वारो दिनकरकुलक्षत्रसंतानमल्ली-  
मालाम्लानस्तवकमधुपा ज़िरे राजपुत्राः ।  
गमस्तेषामचरमभवत्ताडकाकालरात्रि-  
प्रत्यूषोऽयं सुचरितकथाकन्दलीमूलकन्दः ॥’

स्थिरो वाङ्मानःक्रियाभिरचञ्चलः । यथा वीरचरिते—

‘प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात् ।  
न त्वेव दूषयिष्यामि शत्रुग्रहमहाव्रतम् ॥’

यथा वा भृत्यहरिशतके—

‘प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः  
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।  
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः  
प्रारब्धमुत्तमगुणास्त्वमिवोद्भवन्ति ॥’

युवा प्रसिद्धः । वुद्धिर्ज्ञानम् । गृहीतविशेषकरी तु प्रजा । यथा माल-  
विकाग्निमित्रे—

‘यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै ।  
तत्तद्विशेषकरणात्मत्युपदिशतीव मे बाला ॥’

स्पष्टमन्यत् ।

नेतृविशेषानाह—

भद्रैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्वैररथम् ।  
यथोद्देशं लक्षणमाह—

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ॥ ३ ॥

सच्चिवादिविहितयोगक्षेमत्वाच्चिन्तारहितः । अत एव गीतादिकलाविष्टो  
भोगप्रवणश्च श्रुद्धाग्रधानन्वाच्च युकुमागमत्त्वानागो मृदुरिति ललितः ।  
यथा रत्नावल्याम्—

‘राज्यं निर्जितशत्रुं योग्यसच्चिवे न्यस्तः समस्तो भरः  
मध्यन्तप्राक्षण्यालिताः प्रशमितशोषोपमर्गाः प्रजाः ।  
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं  
कामः कामगुपैत्वं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥’

अथ शान्तः—

सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः ।

विनयादिनेतृसामान्यगुणयोगी धीरशान्तो द्विजादिक इति विप्रवणिसम-  
चिवादीनां प्रकरणनेतृणामुपलक्षणम् । विवक्षितं चैतत् । तेन नैश्चिन्त्यादि-  
गुणसंभवेऽपि विप्रादीनां शान्ततैव न लालित्यम् । यथा माल्नीमात्रव-मृद-  
कटिकादौ माधव-चारुदत्तादिः ।

‘तत उदयगिरेरिवैक एव

स्फुरितगुणद्युतिसुन्दरः कलावान् ।

इह जगति महोत्सवस्य हेतु-

र्नयनवतामुदियाय बालचन्द्रः ॥’

इत्यादि । यथा वा—

मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं य-

त्सदसि निबिडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।

मम निधनदशायां वर्तमानस्य पपै-

स्तदसदशमनुष्ठैर्धुष्यते घोषणायाम् ॥’

अथ धीरोदात्तः—

**महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ॥ ४ ॥**

**स्थिरो निगृष्टाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ।**

महासत्त्वः शोकक्रोधाद्यनभिभूतान्तःसत्त्वः । अविकत्थनोऽनात्मश्लाघनः । निगृष्टाहंकारो विनयच्छन्नावलेपः । दृढव्रतोऽङ्गीकृतनिर्विहरो धीरोदात्तः । यथा नागानन्दे—‘जीमृतवाहनः—

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृप्तिं न पश्यामि तवैव तावत्किं भक्षणात्त्वं चिरतो गरुत्मन् ॥’

यथा च रामं प्रति—

‘॥दृत्नम्यामिगाकाग विसृष्टस्य वनाय च ।

न मया लक्षितस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥’

यच्च केषांचित्स्वैर्यादीनां सामान्यगुणानामपि विशेषलक्षणे क्लिचित्संकीर्तिर्न तत्त्वेण तत्राधिक्षयप्रतिपादनार्थम् । ननु च कथं जीमृतवाहनादिर्नागानन्दादावुदात्त इत्युच्यते । औदात्यं हि नाम सर्वोल्कर्पेण वृत्तिः । तत्र विजिंगीपुत्र एवोपयद्यते । जीमृतवाहनमनु निर्जिंगीपुत्रयैव कविना प्रतिपादितः । यथा—

‘तिष्ठन्भाति पितुः पुरो भुवि यथा सिहासने किं तथा

यत्संवाहयतः मुखं हि चरणौ तातस्य किं राज्यतः ।

किं भुक्ते भुवनत्रये धृतिरसौ भुक्तोऽज्ञिते या गुरोरायासः खलु राज्यमुज्जितगुरोस्तत्रास्ति कश्चिद्गुणः ॥’

इत्यनेन ।

‘पित्रोर्विधातुं शुश्रूपां त्यक्त्वैश्वर्यं क्रमागतम् ।

वनं गाम्यहमप्येप यथा जीमृतवाहनः ॥’

इत्यनेन च । अतोऽस्यात्यन्तशमप्रधानत्वात्परमकारुणिकत्वाच्च वीतरागवच्छान्तता । अन्यच्चात्रायुक्तं यन्याभृतं राज्यसुखादौ निरभिलापं नायकमुपादायान्तरा तयाभृतमल्यवत्यनुरागोपर्वणनम्, यच्चोक्तं सामान्यगुणयोगी द्विजादिर्धीरशान्त इति, तदपि पारिभाषिकत्वाद्वास्तवमित्यभेदकम् । अतो वस्तुस्थित्या तु द्वयुक्तिपूर्ण-जीमृतवाहनादिव्यवहारः शान्ततामाविर्भावयन्ति ।

अत्रोच्यते—यत्तावदुक्तं सर्वोक्तर्षेण वृत्तिरोदात्त्यमिति, न तज्जीमूतवाहनादौ परिहीयते । न ह्येकरूपैव विजिगीषुता । यः केनपि शौर्यत्यागदयादिनान्यानतिशेते स विजिगीषुः; न यः परापकारेणार्थग्रहादिप्रवृत्तः । तथात्वे च मार्गदूषकादेरपि धीरोदात्तत्वप्रसक्तिः । रामादेरपि जगत्पालनीयमिति दुष्टनिग्रहे प्रवृत्तस्य नान्तरीयक्त्वेन भूम्यादिलाभः । जीमूतवाहनादिस्तु प्राणेरपि परार्थसंपादनाद्विधमप्यतिशेत इत्युदात्तमः । यथोक्तम्—‘तिष्ठन्भाति’ इत्यादिना विषयसुखपराङ्मुखतेति, तत्सत्यम् । कार्पण्यहेतुपु स्वसुखतृष्णासु निरभिलापा एव जिगीषवः । यदुक्तम्—

‘स्वसुखनिरभिलापः विद्यसे लोकहेतोः

प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।

अनुभवति हि मूर्खा पादपस्तीत्रमुष्णं

शमयति परितापं आययोपाश्रितानाम् ॥’

इत्यादिना मलयवत्यनुरागोपवर्णनं त्वशान्तरसाश्रयं शान्तनायकतां प्रत्युत निषेधति । शान्तत्वं चानहंकृतत्वं तच्च विप्रादेरौचित्यप्राप्तमिति वस्तुस्थित्या विप्रादेः शान्तता न स्वपरिभाषामात्रेण । तु द्विजीमूतवाहनयोस्तु कारुणिकत्वाविशेषपि सकामनिष्कामकरुणत्वादिर्थमत्वाद्वेदः । अतो जीमूतवाहनादेर्धीरोदात्तत्वमिति ।

अथ धीरोद्धतः—

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछब्दपरायणः ॥ ५ ॥

धीरोद्दत्स्वरहंकारी चलश्चण्डो विक्त्थनः ।

दर्पः शौर्यादिमदः । मात्सर्यमसहनता । मञ्चबलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनं माया । उच्च वच्चनामात्रम् । चलेऽनवस्थितश्चण्डो रौद्रः स्वगुणशंसी विक्त्थनो धीरोद्धतो भवति । यथा जामदद्यः—‘कैश्चोद्धारसारत्रिभुवनविजय—’ इत्यादि । यथा च रावणः—‘त्रैलोक्यैर्थ्यरक्ष्मीहठहरणसहा बाह्वो रावणस्य ।’

धीरललितादिशब्दाश्र यथोक्तगुणसमारोपितावस्थाभिवायिनो वत्सवृषभमहोक्षादिवन्न जात्या कश्चिदवस्थितरूपे ललितादिरस्ति । तदा हि महाकविप्रबन्धेषु विरुद्धानेकरूपाभिवानमसंगतमेव स्यात्, जातेरनपायित्वात् । तथा च भवभूतिनैक एव जामदद्यः—

‘ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये ।

जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥’

इत्यादिना रावणं प्रति धीरोदात्तत्वेन ‘कैलासोद्भारसार—’ इत्यादिभिश्च रामादीन्प्रति प्रथमं धीरोद्भृतत्वेन पुनः ‘पुण्या ब्राह्मणजाति’ इत्यादिभिश्च धीरशान्तत्वेनोपवर्णितः । न चावस्थान्तराभिधानमनुचितमङ्गभूतनायकानां नायकान्तरापेक्षया महासन्त्वादेरव्यवस्थितत्वादङ्गिनस्तु रामादेरेकप्रबन्धोपात्तान्प्रत्येकरूपत्वादारम्भोपात्तावस्थातोऽवस्थान्तरोपादानमन्याख्यम् । यथोदात्तत्वाभिमतस्य रामस्य छद्मना वालिवधादमहासन्त्वतया स्वावस्थापरित्याग इति । वक्ष्यमाणानां च दक्षिणाद्यवस्थानां पूर्वा प्रत्यन्ययाहृत इति नित्यमागेऽनारिर्भावागुपात्तावस्थातोऽवस्थान्तराभिधानमङ्गाङ्गिनोरप्यविरुद्धम् ।

अथ शुङ्गारनेत्रवस्था:—

स दक्षिणः शठो धृष्टः पूर्वा प्रत्यन्यया हृतः ॥ ६ ॥

नायकप्रकरणात्पूर्वा नायिकां प्रलङ्घ्ययापूर्वनायिकयापहृतचित्तस्थृत्यन्मयो वक्ष्यमाणभेदेन स चतुरवस्थः । तदेवं पूर्वोक्तानां चतुर्णा प्रत्येकं चतुरवस्थत्वेन षोडशाधा नायकः ।

तत्र—

दक्षिणोऽस्यां सहदयः

योऽस्यां ज्येष्ठायां हृदयेन सह व्यवहरति स दक्षिणः । यथा मैव—-

‘प्रसीदत्यालोके किमपि किमपि प्रेमगुरुवो

रतिक्रीडाः कोऽपि प्रतिदिनमपूर्वोऽस्य विनयः ।

सविश्राम्भः कश्चित्कथयति च किंचित्परिजनो

न चाहं प्रत्येमि प्रियसस्मि किमप्यस्य विकृतिम् ॥’

यथा वा—

‘उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः गण्डनहेतवो हि दृष्टाः ।

उपचारविविर्मनस्त्रिनीनां ननु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्यः ॥’

अथ शठः—

गृहविप्रियकृच्छ्रः ।

दक्षिणस्यापि नायिकान्तरापहृतचित्ततया विप्रियकाग्निविशेषेऽपि स-  
हृदयत्वेन शठाद्विशेषः । यथा—

‘शठोऽन्यस्याः काञ्चीमणिरणितमाकर्ण्य सहसा  
यदाक्षिण्यलेव प्रशिथिलभुजग्रन्थिरभवः ।  
तदेतत्काच्छे धृतमधुमयत्वद्वहुवचो-  
विषेणावूर्णन्ती किमपि न सखी मे गणयति ॥’

अथ धृष्टः—

व्यक्ताङ्गवैकृतो धृष्टो  
यथामरुशतके—

‘लाक्षालङ्घं लालापट्टमभितः केयूरमुद्रा गले  
वक्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूरागोऽपरः ।  
दृष्टा सोपयिताभिमण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो  
लीलातामरसोदरे मृगदशः श्वासाः समाप्ति गताः ॥’

भेदान्तरमाह—

इनुकूलस्त्वेकनायिकः ॥ ७ ॥

यथा—

‘अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थायु य-  
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।  
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं  
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥’

किमवस्थः पुनरेषां वत्सराजादिर्नाटिकानायिकः स्यादित्युच्यते । पूर्वम-  
नुपजातनायिकान्तरानुरागोऽनुकूलः । परतस्तु दक्षिणः । ननु च गूढविप्रि-  
यकारित्वाद्वयक्ततरप्रियत्वाच शाठ्यभास्त्रेऽपि कस्मात् भवतः । न तथा-  
विधविप्रियत्वेऽपि वत्सराजादेराप्रबन्धसमाप्तेऽप्यां नायिकां प्रति सहृदयत्वा-  
दक्षिणतैव । न चोभयोज्येष्टाकनिष्ठोर्नायिकस्य स्नेहेन न भवितव्यमिति  
वाच्यमविरोधात् । महाकविप्रबन्धेषु च—

‘स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता वारोऽङ्गराजस्वसु-  
र्यौते रात्रिरियं जिता कमलया देवी प्रसाद्याय च ।

इत्यन्तः पुरसुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते  
देवेनाप्रतिपत्तिमृदमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः ॥’  
इत्यादावपक्षपातेन सर्वनायिकासु प्रतिपत्त्युपनिबन्धनात् ।

तथा च भरतः—

‘मधुरस्त्यागी रागं न याति मदनस्य नापि वशमेति ।  
अवमानितश्च नायी विरज्यते स तु भवेज्येष्टः ॥’

इत्यत्र न रागं याति न मदनस्य वशमेतीत्यनेनासाधारण एकस्यां स्नेहो  
निपिद्धो दक्षिणस्येति । अतो वत्सराजादेशातः नमगमि स्थितं दाक्षिण्य-  
मिति । षोडशानामषि प्रत्येकं येषुम् नमागमोनाम् न गारिशलाग त्वेऽन्  
भवन्ति ।

सहायानाह—

पताकानायकस्त्वन्यः पीठमद्दो विचक्षणः ।  
तस्यवानुचरो भक्तः किंचिद्दूनश्च तद्गुणः ॥ ८ ॥

प्रागुक्तप्रामङ्गिकेनिवृत्तिनिशेषः पताका तत्त्वायकः पीठमद्दः प्रयोनेतिवृ-  
त्तनायकस्य सहायः । यथा मालतीमाप्ने मकरन्दः, रामायणे सुग्रीवः ।

सहायान्तरमाह—

एकविद्यो विटशान्यो हास्यकुच विदूपकः ।

गीतादिविद्यानां नायकोपयोगिनीनामेकस्या विद्याया वेदिता विटः ।  
हास्यकारी विदूपकः । अस्य विकृताकारवेषादित्वं हास्यकारित्वेनैव लभ्यते ।  
यथा शेखरको नागानन्दे विटः । विदूपकः प्रसिद्ध एव ।

अथ प्रतिनायकः—

लुध्यो धीरोद्धतः स्तव्यः पापकृद्यसनी रिपुः ॥ ९ ॥

तस्य नायकस्येत्यभूतः प्रतिपत्तनायकः भवति । यथा रामयुधिष्ठिरयो  
गवणदुर्योधनौ ।

अथ सात्त्विका नायकगुणाः—

शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्यतेजसी ।

ललितादार्यमिल्यष्टौ संच्चजाः पौरुषा गुणाः ॥ १० ॥

तत्र—

नीचे वृणायिके स्पर्धा शोभायां शार्यदक्षते ।

१. ‘धीर्य’ इति पाठः । २. ‘सात्त्विका’ इति पाठः ।

नीचे वृणा । यथा वीरचरिते—

‘उत्तालताडकोत्पातदर्शनेऽप्यप्रकम्पितः ।

नियुक्तामापमानाग स्वैषेन विचिकित्सति ॥’

गुणाभिकैः स्पर्धा यथा—

‘एतां पश्य पुरास्थलीमिह किल क्रीडाकिरातो हरः

कोदण्डेन किरीटिना सरभसं चूडान्तरे ताडितः ।

इत्याकर्ण्य कथाद्युतं हिमनिधावद्रौ सुभद्रापते-

• मन्दं मन्दमकारि येन निजयोर्देव्दण्डयोर्मण्डलम् ॥’

शौर्यशोभा । यथा मैव—

‘अन्त्रैः स्वैरपि संयताग्रचरणो मूच्छीविरामक्षणे

स्वाधीनत्रणिताङ्गशस्त्रनिचितो रोमोद्रुमं वर्मयन् ।

भग्नानुद्रुत्यक्षिजानप्रभयान्संतर्जयन्निष्टुरं

धन्यो धाम जयश्रियः पृथुरणस्तम्भे पकाानवे ॥’

दक्षशोभा । यथा वीरचरिते—

‘स्फूर्जद्रुत्तमहस्त्वान्विभितमिव ग्रादुभवत्यग्रतो

रामस्य त्रिपुरान्तकृद्विविषदा नेतोभिग्हं धनुः ।

शुण्डारः कलमेन यद्वद्वचले वत्सेन दोदण्डक-

स्तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुणं कृष्टं च भग्नं च तत् ॥’

अथ विलासः—

गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सास्पतं वचः ॥ ? ? ॥

यथा—

‘दृष्टिस्तुणीकृतजगत्रयसत्त्वसारा

धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् ।

कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो

वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव ॥’

अथ माधुर्यम्—

शूक्ष्मो विकारो माधुर्यं संक्षोभे सुप्रहत्यपि ।

महत्यपि विकारहेतौ मधुरो विकारो माधुर्यम् । यथा—

‘कपोले जानक्याः करिकलभद्रन्तद्युतिसुपि

स्मरम्भेरं गण्डोद्भुमरपुलकं वक्रकमलम् ।

मुहुः पश्यशृण्वन्रजनिचरसेनाकलकलं  
जटाजूटग्रन्थिं द्रव्यति रघूणां परिवृद्धः ॥'

अथ गाम्भीर्यम्—

गाम्भीर्यं यत्प्रभावेन विकारो नोपलक्ष्यते ॥ १२ ॥  
मृदुविकारोपलभाद्विकारानुपलविधरन्येति माधुर्यादन्यद्वाम्भीर्यम् ।

यथा—

‘आहूतस्याभिपेक्षाय विसृष्टस्य वनाय च ।

न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥’

अथ स्तैर्यम्—

व्यवसायादचलनं स्थैर्यं विघ्नकुलादपि ।

यथा वीरचरिते—

‘प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यनिकमात् ।

न त्वेव दूषयिष्यामि शश्वत्रहमहाव्रतम् ॥’

अथ तेजः—

अधिक्षेपाद्यमहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि ॥ १३ ॥

यथा—

‘ब्रूत नृतनकृप्माणडक्यानां के भवन्त्यमी ।

अङ्गुलीदर्शनाद्येन न जीवन्ति मनस्त्विनः ॥’

अथ ललितम्—

शृङ्गाराकारचेष्टालं सहजं ललितं मृदु ।

स्वाभाविकः शृङ्गारो मृदुः । तथाविधा शृङ्गारचेष्टा च ललितम् । यथा  
मैव—

‘लावण्यमन्मथविलासविजृम्भितेन  
स्वाभाविकेन सुकुमारमनोहरेण ।

किंवा ममेव सखि योऽपि ममोपदेष्टा

तस्यैव किं न विषमं विदधीत तापम् ॥’

अथौदार्यम्—

पियोत्त्याजीवितादानमौदार्यं संदुपग्रहः ॥ १४ ॥

प्रियवचनेन सहाजीवितावधेदीनमौदार्थं सतामुपग्रहश्च । यथा नागानन्दे—

‘शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृष्णि न पश्यामि तवैव ताविक्तं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन् ॥’

सदुपग्रहो यथा—

‘एते वयममी दाराः कन्येयं कुलजीवितम् ।

ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु ॥’

अथ नायिका—

स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्वुणा नायिका त्रिधा ।

तद्वुणेति यथोक्तसंभवे नायगमामानगुणगोगिनी नायिकेति । स्वत्री परत्री साधारणस्त्रीत्यनेन विभागेन त्रिधा ।

तत्र स्त्रीयाया विभागगर्भं नायान् नायमात्—

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्त्रीया शीलाज्वादियुक् ॥ १५ ॥

शीलं सुवृत्तम् । गतिगातुः लज्जावती पुमोपचारनिपुणा स्त्रीया नायिका ।

तत्र शीलवती यथा—

‘कुलवादिभाए पेच्छह जोवणलाभण्विभमविलासा ।

प्रवसन्ति व्व प्रवसिए एन्ति व्व पिये घरं एते ॥’

॥ नैरादिगोगिनी यथा—

‘हैसिअमविआरमुद्धं भमिअं विरहितविलासगुच्छाभम् ।

भणिअं महानगरं धण्णाण घरे कलत्ताणम् ॥’

लज्जावती यथा ।

‘लंजापञ्चतपमाहणां परतित्तिणिप्पिवासाइ ।

अविणअदुम्मेहाइ धण्णाण घरे कलत्ताइ ॥’

१. ‘स्वापि’ इति पाठः.

२. ‘कुलवालिकायाः प्रेक्षध्वं यौवनलावण्यविभ्रमविलासाः ।

प्रवसन्तीव प्रवसिते आगच्छन्तीव प्रिये गृहमागते ॥’ इति च्छाया.

३. ‘हैसिअविचारमुरधं भ्रमितं विरहितविलासमुच्छायम् ।

भणितं स्वभावसरलं धन्यानां गृहे कलत्राणम् ॥’ इति च्छाया.

४. ‘लज्जापर्याप्तप्रसाधनानि परतृप्तिनिष्पिवासानि ।

अविनयदुर्मेधांसि धन्यानां गृहे कलत्राणि ॥’ इति च्छाया

सा चैवंविधा स्त्रीया मुग्धा-मध्या-प्रगल्भाभेदात्रिविधा ।

तत्र—

मुग्धा नववयःकामा रत्ना वामा मृदुः कुष्ठि ।

प्रथमावतीर्णतारुण्यमन्मथा रमणे वामशीला सुखोपायप्रसादना मुग्धा-नायिका ।

तत्र वयोमुग्धा यथा—

‘विस्तारी स्तनभार एष गमितो न स्वोचितामुन्नतिं

रेखोद्भासिकृतं वलित्रयमिदं न स्पष्टनिष्ठोऽन्तम् ।

मःयेऽस्या ऋजुरायतार्थकपिशा रोमावली निर्मिता

रम्यं यौवनशैशवव्यतिकरोन्मिश्रं वयो वर्तते ॥’

यथा च मैत्र—

‘उच्छ्रुतमण्डलप्रान्तरेखमावद्धकुञ्जलम् ।

अपर्याप्तिमुरोवृद्धेः शंसत्यस्याः स्तनद्वयम् ॥’

काममुग्धा यथा—

‘टृष्टिः सालसतां विभर्ति न शिशुक्रीडासु बद्धादरा

श्रोत्रे प्रेपयति प्रवर्तितसखीसंभोगवार्तास्वपि ।

पुंसामङ्गमपेतशङ्गमधुना नारोहति प्राभ्यथा

बाला नूतनयौवनव्यतिकरावष्टम्यमाना शैनैः ॥’

रत्नवामा यथा—

‘व्याहृता प्रतिवचो न संदेषे गन्तुमैच्छद्वलम्बितांशुका ।

सेवते स्म शयनं पराञ्जुखी सा तथापि रत्ये पिनाकिनः ॥’

मृदुः कोपे यथा—

‘प्रथमजनिते बाला मन्यौ विकारमजानती

कितवन्तरिते नासज्याङ्के विनम्रमुजैव सा ।

चित्रुकमलिंकं चोन्नम्योच्चैरकृत्रिमविभ्रमा

नयनसलिलस्यन्दिन्योष्टै रुदन्त्यपि चुम्बिता ॥’

एवमन्येऽपि लज्जासंवृतानुरागनिबन्धना मुग्धा व्यवहारा निबन्धनीयाः ।

यथा—

‘न मःये संस्कारं कुसुममपि बाला विषहते

न निःश्वासैः मुम्रूर्जनयति तरङ्गव्यतिकरम् ।

नवोदा पश्यन्ती लिखितमिव भर्तुः प्रतिमुखं  
प्रोहद्रोमाञ्चा न पिबति न पात्रं चलयति ॥'

अथ मध्या—

मध्योद्यावनानङ्गा मोहान्तमुरतक्षमा ॥ २६ ॥  
संप्राप्तारुण्यकामा मोहान्तरतयोग्या मध्या ।  
तत्र यौवनवती यथा—  
‘आलापानभ्रुविलासो विरलयति लसद्वाहुविक्षिप्तियां  
नीवीग्रन्थं प्रथिम्ना प्रतनयति मनाङ्गमयनिम्नो नितम्बः ।  
उत्पुष्पत्पार्श्वमूर्च्छत्तुचशिखरमुरो नूनमन्तः स्मरेण  
मृष्टा कोटणकोद्या हरिणशिशुदशो दृश्यते यौवनश्रीः ॥’  
कामवती यथा—

‘स्मरनवनदीपूरणोदा: पुनर्गुरुसेतुभि-  
र्यदपि विघृतास्तिष्ठन्यारादपूर्णमनोरथाः ।  
तदपि किपितप्रस्त्रैर्द्वैः परस्परमुन्मुखा  
नयननलिनीनालाङ्कृष्टं पिचनित रसं प्रियाः ॥’

५ ॥ मध्योगो यथा—

‘ताव चिअ इममए महिलाणं विभमा विराअन्ति ।  
जाव ण कुवलयदलसच्छहाइ मउलेन्ति णअणाइ ॥’  
एवं धीरायामधीरायां धीराधीरायामप्युदाहार्यम् ।

अथास्या मानवृत्तिः—

‘धीरा सोत्प्राप्तवकोक्त्या मध्या साश्रु कृतागसम् ।  
खेदयेदयितं कोपादधीरा परुषाक्षरम् ॥ २७ ॥  
मध्याधीरा कृतापाराधं प्रियं सोत्प्राप्तवकोक्त्या खेदयेत् । यथा मावे—  
‘न खलु वयममुप्य दानयोग्याः  
पिबति च पाति च यासकौरहस्त्वाम् ।  
त्रज विटपममुं ददस्व तस्यै  
भवतु यतः सदशोश्चिराय योगः ॥’

१. ‘तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते ।  
यावत्र कुवलयदलसच्छमानि मुकुलयन्ति नयनानि ॥’ इति च्छाया.

धीराधीरा साश्रु सोत्प्रासवकोक्त्या खेदयेत् । यथामरुशतके—

‘बाले नाथ विमुच्च मानिनि रुचं रोषान्मया किं कृतं  
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान्सर्वेऽपराधा मयि ।  
तर्किं रोदिषि गद्धदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते  
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥’

अधीरा साश्रु परुषाक्षरम् । यथा—

‘यातु यातु किमनेन तिष्ठता मुच्च मुच्च सखि माद्रं कृथाः ।  
खण्डिताधरकलङ्कितं प्रियं शकुमो न नयनैर्नीक्षितुम् ॥’

एवमपरेऽपि त्रीडानुपहिनाः स्वयमनभियोगकारिणो मध्याव्यवहारा भव-  
न्ति । यथा—

‘स्वेदाभ्यःकणिः॥विनेऽपि वदने जातेऽपि रोमोद्रमे  
विश्रम्भेऽपि गुरो पयोधरभरोत्कम्पेऽपि वृद्धिं गते ।  
दुर्वारस्मरनिर्भरेऽपि हृदये नैवाभियुक्तः प्रिय-  
स्तन्वङ्गच्चा हठकेशकर्षणवनाश्लेषामृते लुब्धया ॥’

स्वतोऽनभियोजकत्वं हठकेशकर्षणवनाश्लेषामृते लुब्धयेवेत्युत्प्रेक्षाप्रतीतेः  
अथ प्रगल्भा—

यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्के ।  
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना ॥ १८ ॥

गाढ़यौवना । यथा मैव—

‘अभ्युन्नतस्तनमुरो नयने च दीर्घं  
वक्रे भुवावतितरां वचनं ततोऽपि ।  
मध्योऽविकं तनुरतीवगुरुर्नितम्बो  
मन्दा गतिः किमपि चाद्गुतयौवनायाः ॥’

यथा च—

‘स्तनतटमिदमुत्तुङ्गं निम्नो मध्यः समुन्नतं जघनम् ।  
विषमे मृगशावाद्या वपुषि नवे क इव न स्वलति ॥’

भावप्रगल्भा यथा—

‘न जाने संमुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये ।  
सर्वाण्यङ्गानि किं यान्ति नेत्रतामुत कर्णताम् ॥’

## द्वितीयः प्रकाशः ।

रत्नप्रगल्भा यथा—

‘कान्ते तन्मुपागने विग्लिता नीवी स्वयं बन्धना-  
द्वासः प्रश्नमेवलागुणधृतं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम् ।

एतावत्सखि वेद्वि केवलमहं तस्याङ्गमङ्गे पुनः  
कोऽसौ कास्मि रतं तु किं कथमिति स्वल्पापि मे न स्मृतिः ॥’  
एवमन्येऽपि परित्यक्तहीयत्राणावैदेव्यप्रायाः प्रगल्भा व्यवहारा वेदि-

तव्याः । यथा—

‘कचित्ताम्बूलाक्तः क्वचिदगरुपङ्गाङ्गमलिनः  
क्रनिज्ञर्णोऽपारी क्वचिदपि च सालक्तकपदः ।  
वलीभङ्गाभोगैरलकपतितैः शीर्णकुम्हैः  
त्रियाः सर्वावस्थं कथयति रतं प्रच्छदपटः ॥’

अथास्याः कोपचेष्टा—

सावहित्यादरोदास्ते रतौ धीरेतरा कुधा ।

संतर्ज्य ताडयेन्मैध्या मध्याधीरेव तं वदेत् ॥ १९ ॥

सहावहित्येनाकारसंवरणेनादेरेण चोपचाराधिक्येन वर्तते सा सावहि-  
त्यादरा । रतावुदासीना कुधा कोपेन भवति ।

सावहित्यादरा । यथामरुशतके—

‘एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युद्माहृत-  
स्ताम्बूलाहरणच्छलेन रभसाश्छेषोऽपि संविनितः ।  
आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं न्यापारयन्त्यान्तिके  
कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरस्या कोपः कृतार्थोकृतः ॥’

रतावुदासीना यथा—

‘आयस्ता कलहं पुरेव कुरुते न संसने वाससो  
भग्नभूगतिश्चण्ड्यमानमधरं धत्ते न केशग्रहे ।

अङ्गान्यर्पयति स्वयं भवति नो वामा हठालिङ्गने  
तन्व्या शिक्षित एष संप्रति कुतः कोपप्रकारोऽपरः ॥’

इतरा त्वधीरप्रगल्भा कुपिता सति संतर्ज्य ताडयति । यथामरुशतके—

‘कोपात्कोमललोलबाहुलतिकापाशेन बद्धा दृढं  
नीत्वा केलिनिकेतनं दयितया सायं सखीनां पुरः ।

१. ‘कान्तम्’ इति पाठः.

भूयोऽप्येवमिति स्वलत्कलगिरा संसूच्य दुश्रेष्ठिं  
धन्यो हन्यत एष निहुतिपरः प्रेयान्स्तदन्या हसन् ॥'

धीराधीरप्रगल्भा मध्याधीरेव तं वदति सोत्प्रासवक्रोक्त्या । यथा तत्रैव—  
'कोपो यत्र भुकुटिरचना निग्रहो यत्र मौनं  
यत्रान्योन्यस्मितमनुनयो दृष्टिपातः प्रसादः ।  
तस्य प्रेम्णस्तदिदमधुना वैशसं पश्य जातं  
त्वं पादान्ते लुठसि न च मे मन्युमोक्षः खलायाः ॥'

पुनश्च—

द्वेषा ज्येष्ठा कनिष्ठा चेत्यमुखा द्वादशोदिताः ।  
मध्याप्रगल्भाभेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठाकनिष्ठात्वभेदेन द्वादश भेदा भवन्ति ।  
मुखा त्वेकरूपैव । ज्येष्ठाकनिष्ठे । यथामरुशतके—  
'द्वैष्ट्रिकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-  
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः ।  
ईपद्मूक्रितकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-  
मन्तर्हीसलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां तुम्बति ॥'  
न चानयोर्दानिष्ठप्रेमभ्यामेव व्यवहारः । अपि तु प्रेम्णापि । यथा  
चेतत्थोक्तं दिणि । ४० । एषां च धीरमध्या-अधीरमध्या-धीराधीरम-  
ध्या-धीरप्रगल्भा-अधीरप्रगल्भा-धीराधीरप्रगल्भाभेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठाकनि-  
ष्ठाभेदाद्वादशानां वासवदत्ता-रक्षावलीवत्प्रबन्धनायिकानामुदाहरणानि महाव-  
विप्रवन्धेष्वनुसर्तव्यानि ।

अथान्यत्री—

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाङ्गिरसे कवित् ॥ २० ॥  
कन्यानुरागमिञ्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम् ।  
नायकान्तरसंवन्धिन्यन्योदा । यथा—  
'द्वैष्ट हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मिन्गृहे दास्यसि  
प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसा: कौपीरपः पास्यति ।  
एकाकिन्यपि यामि तद्वरमितः स्नोतस्तमालाकुलं  
नीरन्धास्तनुमालिखन्तु जरटच्छेदानलग्रन्थयः ॥'

१. 'अन्विच्छन्त' इति पाठः.

## द्वितीयः प्रकाशः ।

१९

इयं तत्त्वज्ञनि प्रवानं रसे न कर्विन्नवन्नयेति न प्रपञ्चिता । कन्यका  
तु पित्राद्यायत्त्वादपरिणीताप्यन्यस्त्रीत्युच्यते । तस्यां पित्रादिष्योऽन्य-  
मानायां युलभायामपि परोपरो वस्त्रकान्ताभयात्प्रच्छशं कामित्वं प्रवर्तते ।  
यथा मालत्यां मालवस्त्र सागरिकायां च वस्त्राजस्येति । तदनुरागश्च स्वे-  
च्छया प्रवानप्रधानरसमाश्रयो निवन्धनीयः । यथा रत्नावली-नागान-  
न्दयोः सागरिका-मलयवत्यनुराग इति ।

साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागलभ्यथौर्त्ययुक् ॥ २१ ॥

तद्यवहारो विस्तरतः शास्त्रान्तरे निर्दर्शितः । दिङ्गात्रं तु—

छन्नकामसुखार्थाङ्गस्त्रत्राहंयुपण्डकान् ।

रक्तेव रञ्जयेदाद्व्याच्चिःस्वान्मात्रा विवासयेत् ॥ २२ ॥

उन्नें ये कामयन्ते ते छन्नकामाः ग्रोनिय गणिनिःप्रभृतयः, सुखार्थो-  
अप्रयासावासधनः सुखप्रयोजनो वा, अज्ञो मूर्खः, स्वतन्त्रो निरङ्गशः,  
अहंयुरहंकृतः, पण्डको वातपण्डादिः, एतान्बहुवित्तानरक्तेव रञ्जयेदर्था-  
र्थम् । तत्प्रधानत्वात्तद्वृत्तेः । गृहीतार्थान्कुद्दन्यादिना निष्कासयेत्युनः प्रनि-  
संधानाय । इदं तासामौत्सर्गिं रूपम् ।

रूपकेषु तु—

रक्तेव लप्रहसने नैषा दिव्यनृपाश्रये ।

प्रहसनवर्जिते प्रकरणादौ रक्तैवेषा विधेया । यथा मृच्छकटिकायां वस-  
न्तसेना चारुदत्तस्य । प्रहसने त्वरक्तापि हास्यहेतुत्वात् । नाटकादौ तु दि-  
व्यनृपनायके नैव विधेया ।

अथ भेदान्तराणि—

आसामष्टावस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः ॥ २३ ॥

स्वाधीनपतिका वासकसज्जा विरहोत्कण्ठिता खण्डिता कलहान्तरिता वि-  
प्रलङ्घा प्रोपितप्रिया अभिसारिकेत्यष्टौ स्वस्त्रीप्रभृतीनामवस्थाः । नायिकाप्र-  
भृतीनामप्यवस्थारूपत्वे सत्यवस्थान्तराभिधानं पूर्वासां धर्मित्वप्रतिपादना-  
याष्टाविनि न्यूनार्थिकव्यवच्छेदः । न च वासकसज्जादैः स्वाधीनपतिकादा-  
वन्तर्भावः । अनासन्नप्रियत्वाद्वासकसज्जाया न स्वाधीनपतिकात्वम् । यदि  
चैप्यत्प्रियापि स्वाधीनपतिका प्रोपितप्रियापि न पृथग्वाच्या । न चेयता

१. ‘रूपकेष्वनुरक्तैव कार्या प्रहसनेतरे’ इति पाठः.

न्यवधानेनासत्तिरिति नियन्तुं शक्यम् । न चाविदितप्रियव्यलीकायाः ख-  
ण्डितात्वं नापि प्रवृत्तरतिभोगेच्छायाः प्रोषितप्रियात्वं स्वयमगमनान्नायकं  
प्रत्यप्रयोजकत्वान्नाभिसारिकात्वम् । एवमुत्कण्ठिताप्यन्यैव पूर्वम्भ्यः ।  
औचित्यप्राप्तप्रियागमनसमयातिवृत्तिविधुरा न वासकसज्जा । तथा विप्रल-  
ब्धापि वासकसज्जावदन्यैव पूर्वम्भ्यः । उक्त्वा नायात इति प्रतारणावि-  
क्याच्च वासकसज्जोत्कण्ठितयोः पृथक् । कलहान्तरिता तु यद्यपि विदित-  
व्यलीका तथाप्यगृहीतप्रियानुनया पश्चात्ताप्रकाशितप्रसादा पृथगेव ख-  
ण्डितायाः । तत्स्थितमेतदृष्टाववस्था इति ।

तत्र—

आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका ।

यथा—

‘मा गर्वमुद्रह कपोलतले चकास्ति  
कान्तस्वहस्तलिङ्गिता मम मञ्जरीति ।  
अन्यापि किं न सखि भाजनमीदशानां  
वैरी न चेद्वति वेष्ठुरन्तरायः ॥’

अथ वासकसज्जा—

मुदा वासकसज्जा स्वं मण्डयत्येष्यति प्रिये ॥ २४ ॥

स्वमात्मानं वेशम च हर्षेण भूषयत्येष्यति प्रिये । वासकसज्जा यथा—

‘निजपणिपल्लवतस्वलनादभिनासिकाविवरमुत्पत्तिः ।

अपरा परीक्ष्य शनकैर्मुदे मुखवासमास्यकमलश्वसनैः ॥’

अथ विरहोत्कण्ठिता—

चिरयत्यव्यलीके तु विरहोत्कण्ठितोन्मनाः ।

यथा—

‘सखि स विजितो वीणावादैः कथाप्यपरखिया  
पर्णितमनन्तनाम्भ्यां तत्र क्षपाललितं ध्रुवम् ।  
कथमिनरथा सेफालीषु स्वलत्कुसुमास्पि  
प्रसरति नभोमध्येऽपीन्दौ प्रियेण विलम्ब्यते ॥’

१. ‘विरहोत्कण्ठिता मता’ इति पाठः.

अथ खण्डता—

**ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डतेष्याकषायिता ॥ २५ ॥**

यथा—

‘नवनखपदमङ्गं गोपयस्यंशुकेन  
स्थगयसि पुनरोष्टं पाणिना दन्तदष्टम् ।  
प्रतिदिशमपरब्बीसङ्गशंसी विसर्प-  
नवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥’

अथ कलहान्तरिता—

**कलहान्तरितामर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक् ।**

यथा—

‘निःश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते  
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तंदिवं सूच्यते ।  
अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तथोपेक्षितः  
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः ॥’

अथ विप्रलब्धा—

**विप्रलब्धोक्तसमयमपासेऽतिविमानिता ॥ २६ ॥**

यथा—

‘उत्तिष्ठ दूति यामो यामो यातस्तथापि नायातः ।  
यातः परमपि जीवेजीवितनाथो भवेत्तस्याः ॥’

अथ प्रोषितप्रिया—

**दूरदेशान्तरस्ये तु कार्यतः प्रोषितप्रिया ।**

यथामरुशतके—

‘आहृष्टप्रसरात्प्रियस्य पदवीमुद्वीक्ष्य निर्विण्णया  
विश्रान्तेषु पथिष्वहः परिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति ।  
दत्त्वैकं सशुचा गृहं प्रति पदं पान्थखियास्मिन्क्षणे  
माभूदागत इत्यमन्दवलितग्रीवं पुनर्वीक्षितम् ॥’

अथाभिसारिका—

**कामार्तभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाभिसारिका ॥ २७ ॥**

१. ‘विधूते’ इति पाठः.

यथामरुशतके—

‘उरसि निहितस्तारो हारः कृता जघने धने  
कलकलवती काञ्ची पादौ रणन्मणिनूपुरौ ।  
प्रियमभिसरस्येवं मुग्धे त्वमाहतडिण्डिमा  
यदि किमधिकत्रासोत्कम्पं दिशः समुदीक्षसे ॥’

यथा च—

‘न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां  
करुणां यथा च कुरुते स मयि ।  
निपुणं तथैनमुपगम्य वदे-  
रभिदृति काचिदिति संदिदिशे ॥’

तत्र—

चिन्तानिःश्वासखेदाश्रुवैवर्ण्यग्लान्यभूषणैः ।  
युक्ताः पडन्त्या द्वे चाद्ये क्रीडौज्जवल्यप्रहर्षितैः ॥ २८ ॥  
परत्रियौ तु कन्यकोदे । संकेतात्पूर्ति विरहोत्कण्ठिते पश्चाद्विदृष्टकादिना  
सहाभिसरन्त्यावभिसारिके । कुतोऽपि संकेतस्थानमप्राप्ते नायके विप्रलब्धे इति  
व्यवस्थितैवानयोरिति । अस्याधीनप्रिययोरवस्थान्तरायोगात् । यतु मालवि-  
काग्निमत्रादौ ‘योऽप्येवं धीरः सोऽपि दृष्टो देव्याः पुरतः’ इति मालविकाव-  
चनानन्तरम्—‘राजा—

दाक्षिण्यं नाम विम्बोष्ठि नायकानां कुलब्रतम् ।

तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणस्ते त्वदाशानिवन्धनाः ॥’

इत्यादि, तत्र । ग्रन्थिनानुनयाभिप्रायेण । अपि तु सर्वथा मम देव्यधीनत्वमा-  
शङ्क्षय निराशा मा भूदिति कन्याविश्रम्भणायेति । तथानुपसंजातनायक-  
समागमाया देशान्तरव्यवधानेऽप्युत्कण्ठितात्वमेवेति न प्रोषितप्रियात्वमनाय-  
त्तप्रियत्वादेवेति ।

अथासां सहायिन्यः—

दूत्यो दासी सखी कारुर्धात्रेयी प्रतिवेशिका ।  
लिङ्गिनी शिल्पिनी स्वं च नेतृमित्रगुणान्विताः ॥ २९ ॥  
दासी परिचारिका । सखी स्वेहनिवद्धा । कारु रजकीप्रभृतिः । धात्रे-

युपमातृसुता । प्रतिवेशिका प्रतिगृहणी । लिङ्गिनी भिक्षुक्यादिका । शिल्पिनी चित्रकारादिकी । स्वयं चेति दूतीविशेषा नायकमित्राणां पी-उमर्दीदीनां निसृष्टार्थत्वादिना गुणेन युक्ताः । तथा च मालतीमाध्रे काम-न्दकीं प्रति—

‘शाखेषु निष्ठा सहजश्च बोधः प्रागलभ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी ।

कालानुरोधः प्रतिभानवच्चमेते गुणाः कामदुधाः क्रियासु ॥’

तत्र सखी । यथा—

‘मृगशिशुद्वशस्तस्यास्तापं कथं कथयामि ते

दहनपतिता दृष्टा मूर्तिर्मया न हि वैधवी ।

इति तु विदितं नारीरूपः स लोकदशां सुधा

तव शठतया शिल्पोत्कर्षों विधेर्विघटिष्यते ॥’

यथा च—

‘संचं जाणइ दइं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जए राओ ।

मरउ ण तुमं भणिस्सं मरणं पि सलाहणिजं से ॥’

स्वयं दूती । यथा—

‘मैहु एहि किं णिवालअ हरसि णिअं वाउ जइ वि मे सिचअम् ।

साहेमि कस्स सुन्दर दूरे गामो अहं एका ॥’

इत्याद्यूहम् ।

अथ योषिदलंकाराः—

यौवने सत्त्वजाः स्त्रीणामलंकारास्तु विशतिः ।

यौवने सत्त्वोद्धृता विशतिरलंकाराः स्त्रीणां भवन्ति ।

तत्र—

भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः ॥ ३० ॥

शोभा कान्तिश्च दीसिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता ।

औदार्यं धैर्यमित्येते सप्त भावा अयवजाः ॥ ३१ ॥

१. ‘सत्यं जानाति द्राषुं सटदो जने युज्यते रागः ।

वियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि क्षाधनीयमस्याः ॥’ इति च्छाया.

२. ‘मुहुरेहि किं निवारक हरसि निजं वायो यथपि मे सिचयम् ।

साधयामि कस्य सुन्दर दूरे प्रामोऽहमेका ॥’ इति च्छाया.

तत्र भावहावहेलाक्षयोऽङ्गजाः । शोभा कान्तिर्दंसिर्माधुर्य प्रागलम्यमौ-  
दार्यैर्यमित्यवनजाः सप्त ।

लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चित्तम् ।  
मोद्यायितं कुट्टमितं विब्बोको ललितं तथा ॥ ३२ ॥  
विहृतं चेति विज्ञेया दश भावाः स्वभावजाः ।  
तानेव निर्दिशति—

निर्विकारात्मकात्सत्त्वाङ्गावस्तत्राद्यविक्रिया ॥ ३३ ॥  
तत्र विकारहेतौ सत्यप्यविकारकं सत्त्वम् । यथा कुमारसंभवे—  
'श्रुतापरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्हरः प्रसंस्थानपरो बभूव ।  
आत्मेश्वराणां न हि जातु विनाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ॥'  
तस्माद्विकाररूपात्सत्त्वाद्यः प्रथमो विकारोऽन्तर्विपरिवर्ती बीजस्योच्छू-  
नतेव स भावः । यथा—

'दृष्टि; सालसतां विभर्ति न शिशुकीडासु बद्धादरा  
श्रोत्रे प्रेषयति प्रवर्तितसखीसंभोगवार्तास्पि ।  
पुंसामङ्गमपेतशङ्गमधुना नारोहति प्राप्यथा  
बाला नूतनयौवनव्यतिकरावष्टम्यमाना शनैः ॥'

यथा वा कुमारसंभवे—

'हरस्तु किंचित्परिलुप्तैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशीः ।  
उमासुखे विम्बफलाधरोष्ठे व्यापारस्यामास विलोचनानि ॥'

यथा वा मैव—

'तं च्चिअ वअणं ते च्चेअ लोअणे जोव्वणं पि तं च्चेअ ।  
अणा अणङ्गलच्छी अणं च्चिअ किं पि साहेइ ॥'

अथ हावः—

हेवौकसस्तु शृङ्गारो हावोऽक्षिभूविकारकृत् ।  
प्रतिनियताङ्गविकारकारी शृङ्गारः स्वभावविशेषो हावः । यथा मैव—

१. 'तदेव वचनं ते चेव लोचने यौवनमपि तदेव ।

अन्यानङ्गलक्ष्मीरन्यदेव किमपि साधयति ॥' इति च्छाया.

२. 'अल्पालापः' इति पाठः.

‘जं’ कि पि पेच्छमाणं भणमाणं रे जहा तह च्चेअ ।  
णिज्ञाअ जेहमुद्धं वअस्स मुद्धं णिअच्छेहि ॥’

अथ हेला—

स एव हेला सुव्यक्तशृङ्गाररससूचिका ॥ ३४ ॥  
हाव एव स्पष्टभूयोविकारत्वात्सुव्यक्तशृङ्गाररससूचको हेला । यथा  
मैव—

‘तेह झत्ति से पअत्ता सव्वङ्गं विभमा थणुब्मेए ।  
संसइअबालभावा होइ चिरं जह सहीणं पि ॥’

अथायद्वजाः सप्त । तत्र शोभा—

रूपोपभोगतारुण्यैः शोभाङ्गानां विभूषणम् ।

यथा कुमारसंभवे—

‘तां प्राव्युखीं तत्र निवेश्य बालां क्षणं व्यलम्बन्त पुरो निषण्णाः ।  
भूतर्थशोभाह्यमाणनेत्राः प्रसाधने संनिहितपि नार्यः ॥’

इत्यादि । यथा च शाकुन्तले—

‘अनाद्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-  
रनाविद्धं रबं मधु नवमनास्वादितरसम् ।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्वप्मनधं

न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥’

अथ कान्तिः—

मैन्मथावापितच्छाया सैव कान्तिरिति स्मृता ॥ ३५ ॥

शोभैव रागावतारघनीकृता कान्तिः । यथा—

‘उन्मीलद्वदनेनदुदीसिविसरैर्दूरे समुत्सारितं

भिन्नं पीनकुचस्थलस्य च रुचा हस्तप्रभाभिर्हतम् ।

१. ‘यत्किमपि ऐक्षमाणां भणमानां रे यथा तथैव ।

निर्धार्य खेहमुग्धां वयस्य मुग्धां पश्य ॥’ इति च्छाया.

२. ‘तथा श्वटित्यस्याः प्रवृत्ताः सर्वाङ्गं विभमाः स्तलोद्देवे ।

संशयितालभावा भवति चिरं यथा सखीनामपि ॥’ इति च्छाया.

३. ‘मन्मथाद्यासित’ इति पाठः.

एतस्याः कलविक्कुण्ठकदलीकलं मिलत्कौतुका-  
दप्राप्ताङ्गसुखं रूपेव सहसा केशोषु लग्नं तमः ॥'

यथा हि महाशेनार्णनामगे भट्टचाणस्य ।

अथ माधुर्यम्—

अनुलब्धित्वं माधुर्यं

यथा शाकुन्तले—

'सरमिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं  
मलिनमपि हिमांशूर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।  
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी  
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥'

अथ दीपि—

दीपिः कान्तेस्तु विस्तरः ।

यथा—

'देहं पसिअ णिअन्तसुमुहसिजोऽहाविलुत्तमणिवहे ।  
अहिमारि भाण विघ्नं करेसि अणाण विहआसे ॥'

अथ प्रागलभ्यम्—

निःसाध्वसत्त्वं प्रागलभ्यं  
मनःक्षेपपूर्वकोऽङ्गसादः साध्वसम्, तदभावः प्रागलभ्यम् । यथा मैव-  
‘तथा ब्रीडाविधेयापि तथा मुग्धापि सुन्दरी ।  
कलाप्रयोगचातुर्ये सभास्वाचार्यकं गता ॥’

अथौदार्यम्—

औदार्यं प्रश्रयः सदा ॥३६॥

यथा—

'दैर्वाद्वा नितान्तसुमुखशशिज्योत्त्वाविलुप्तमोनिवेह ।  
अभिसारिकाणां निम्नं करोष्यन्यासां विहतारे ॥' इति च्छाया.  
गुरुण्यपि मन्युदुःखे भरिमा पादान्ते सुपस्य ॥'

१. 'दैर्वाद्वा नितान्तसुमुखशशिज्योत्त्वाविलुप्तमोनिवेह ।

अभिसारिकाणां निम्नं करोष्यन्यासां विहतारे ॥' इति च्छाया.

२. 'दिवसं खलु दुःखितायाः सकलं कृला गृहव्यापारम् ।

गुरुण्यपि मन्युदुःखे भरिमा पादान्ते सुपस्य ॥' इति च्छाया.

यथा वा—‘भूमज्जे सहसोद्रता’ इत्यादि ।

अथ धैर्यम्—

चापलाविहता धैर्यं चिदृत्तिरविकत्थना ।

चापलानुपहता मनोवृत्तिरात्मगुणानामनास्थायिका वैर्यमिति । यथा  
मालतीमाधवे—

‘ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावस्थण्डकलः शशी

दहतु मदनः किंवा मृत्योः परेण विश्वास्यति ।

मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया

कुलममलिनं न त्वेवायं जनो न च जीवितम् ॥’

अथ स्वाभाविका दश । तत्र—

प्रियानुकरणं लीला मधुराङ्गविचेष्टितैः ॥ ३७ ॥

प्रियकृतानां वाग्वेषवेष्टानां शृङ्गरिणीनामङ्गनाभिरनुकरणं लीला ।

यथा ममैव—

‘तेह दिंडं तह भणिअं ताए णिअदं तहा तहा सीणम् ।

अवलोइअं सइण्हं सविडमं जह सवत्तीहि ॥’

यथा वा—‘तेनोदितं वदति याति तथा यथामौ’ इत्यादि ।

अथ विलासः—

तात्कालिको विशेषस्तु विलासोऽङ्गक्रियादिषु ।

दयितावलोकनादिकालेऽङ्गे क्रियायां वचने च सातिशयविशेषोत्पत्ति-  
विलासः । यथा मालतीमाधवे—

‘अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्त-

वैचित्र्यमुलसितविभ्रममायताक्ष्याः ।

तद्भूरिसात्विकविकारविशेषरम्य-

माचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥’

१. ‘तथा दृष्टं तथा भणितं तथा नियतं तथा तथा शीर्णम् ।

अवलोकितं सतुण्हं सविभ्रमं यथा सपत्नीभिः ॥’ इति च्छाया.

२. ‘कियोक्षिषु’ इति पाठः.

यथा मैव—

‘सम्रभङ्गं करकिसलयावत्नैरालंपन्ती  
सा पश्यन्ती ललितललितं लोचनस्याश्वलेन ।  
विन्यस्यन्ती चरणकमले लीलया स्वैरयाते-  
र्निःसंगीतं प्रथमवयसा नर्तिता पङ्कजाक्षी ॥’

अथ विहृतम्—

प्राप्तकालं न यद्याद्वीडया विहृतं हि तत् ।  
प्राप्तावसरस्यापि वाक्यस्य लज्जया यदवचनं तद्विहृतम् । यथा—  
‘पादाङ्गुष्ठेन भूमिं किसलयरुचिना सापदेशं लिखन्ती  
भूयो भूयः क्षिपन्ती मयि सितशब्दे लोचने लोलतारे ।  
वक्रं हीनप्रमीषत्पुरदधरपुटं वाक्यगर्भं दधाना  
यन्मां नोवाच किञ्चित्स्थितमपि हृदये मानसं तहुनोति ॥’  
अथ नेतुः कार्यान्तरसहायानाह—  
मन्त्री स्वं वोभयं वापि सखा तस्यार्थचिन्तने ॥ ४२ ॥  
तस्य नेतुर्थचिन्तायां तत्रावापादिलक्षणायां मन्त्री वात्मा वोभयं वा  
सहायः ।

तत्र विभागमाह—

मन्त्रिणा ललितः शेषा मन्त्रिस्वायत्तसिद्धयः ।  
उक्तलक्षणो ललितो नेता मन्त्रयायत्तसिद्धिः । शेषा धीरोदात्तादयः ।  
अनियमेन मन्त्रिणा स्वेन वोभयेन वाङ्गीकृतसिद्धय इति ।

धर्मसहायास्तु—

ऋत्विक्पुरोहितौ धर्मे तपस्यिब्रह्मवादिनः ॥ ४३ ॥  
ब्रह्म वेदस्तं वदन्ति व्याचक्षते वा तच्छीला ब्रह्मवादिनः । आत्मज्ञा-  
निनो वा । शेषाः प्रतीताः ।

दुष्टदमनं दण्डः । तत्सहायास्तु—

सुहृत्कुमाराटविका दण्डे सामन्तसैनिकाः ।  
स्पष्टम् । एवं तत्कार्यान्तरे रेषु सहायान्तराणि योज्यानि । यदाह—

अन्तःपुरे वर्षवराः किराता मूकवामनाः ॥ ४४ ॥

म्लेच्छाभीरशकाराद्याः स्वस्वकार्योपयोगिनः ।

शकारो राज्ञः श्यालो हीनजातिः ।

विशेषान्तरमाह—

ज्येष्ठमध्याधमत्वेन सर्वेषां च त्रिरूपता ॥ ४५ ॥

तारतम्यादथोक्तानां गुणानां चौत्तमादिता ।

एवं प्रागुन्नानां नायकनायिकादूतदूतीमन्त्रिपुरोहितादीनामुत्तममध्यमधमभावेन त्रिरूपता । उत्तमादिभावश्च न गुणसंख्योपचयापत्रयेन किं तर्हि गुणातिशयतारतम्येन ।

एवं नाव्ये विधातव्यो नायकः संपरिच्छदः ॥ ४६ ॥

उक्तो नायकः । तद्वचापारस्तूच्यते—

तद्वचापारात्मिका दृतिश्वतुर्धा तत्र कैशिकी ।

गीतनृत्यविलासाद्यैमृदुः शृङ्खारचेष्टिः ॥ ४७ ॥

प्रवृत्तिरूपो नेतृव्यापारस्वभावो वृत्तिः । सा च कैशिकी-सात्त्वती-आरभटी-भारतीभेदाच्चतुर्विधा । तासां गीतनृत्यविलासकामोपभोगाद्युपलक्ष्यमणोमृदुः शृङ्खारी कामफलावच्छिन्नो व्यापारः कैशिकी । सा तु—

नर्मतस्त्रिफङ्गतत्स्फोटदर्भेश्वतुरङ्गिका ।

तदित्यनेन सर्वत्र नर्म परामृश्यते ।

तत्र—

वैदम्यक्रीडितं नर्म श्रियोपच्छन्दनात्मकम् ॥ ४८ ॥

हास्येनैव सशृङ्खारभयेन विहितं त्रिधा ।

आत्मोपक्षेपसंभोगमानैः शृङ्खार्यपि त्रिधा ॥ ४९ ॥

शुद्धमङ्गं भयं द्रेधा त्रेधा वाग्वेषचेष्टिः ।

सर्वं सहास्यमित्येवं नर्माष्टादशथोदितम् ॥ ५० ॥

अग्राम्य इष्टजनावर्जनरूपः परिहासो नर्म । तच्च शुद्धहास्येन सशृङ्खार-

१. 'सपरिग्रहः' इति पाठः. २. 'स्फङ्ग' इति पाठः.

हास्येन सभयहास्येन च रचितं त्रिविधम् । शृङ्गारवदपि स्वानुरागनिवेदनसं-  
भोगेच्छाप्रकाशन-सापराधप्रियप्रतिभेदन्विविधमेव । भयनर्मापि शुद्धरसा-  
न्तराङ्गभावाद्विविधम् । एवं षड्बिधस्य प्रत्येकं वाग्वेषेषाव्यतिकरेणाद्याद-  
शविधत्वम् ।

तत्र वचोहास्यनर्म यथा—

‘पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन सृष्टेति सख्या परिहासपूर्वम् ।

सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्पत्येन तां निर्वचनं जघान ॥’

वेषनर्म यथा नागानन्दे विदूषकशेखरकव्यतिकरे । क्रियानर्म यथा मा॒  
विकाश्मित्र उत्खमायमानस्य विदूषकस्योपरि निपुणिका सर्पभ्रमकारणं  
दण्डकाष्ठं पातयति । एवं वक्ष्यमाणेष्वपि वाग्वेषेषापरत्वमुदाहार्यम् ।

शृङ्गारवदात्मोपक्षेपनर्म यथा—

‘मध्याहं गमय त्यज श्रमजलं स्थित्वा पयः पीयतां

मा शून्येति विमुच्च पान्थ विवशः शीतः प्रपामण्डपः ।

तामेव स्मर घस्मरस्मरशत्रस्तां निजप्रेयसीं

त्वच्चित्तं तु न रङ्गयन्ति पथिक प्रायः प्रपापालिकाः ॥’

संभोगनर्म यथा—

‘सालोए च्छिअ सूरे घरिणी घरसामिअस्स वेत्तूण ।

णेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स ॥’

माननर्म यथा—

‘तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति

प्रियजनपरिमुक्तं यहुकूलं दधानः ।

मद्विधिवसति मागाः कामिनां मण्डनश्री-

त्रैजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन ॥’

भयनर्म यथा रक्षावल्यामालेख्यदर्शनावसरे—‘सुसंगता—जाणिदो  
मए एसो सब्बो बुत्तन्तो समं चित्तफलहएण । ता देवीए णिवेदइस्सम् ।’  
इत्यादि ।

१. ‘सालोके एव सूर्ये गृहिणी गृहस्त्रामिकस्य गृहीत्वा ।

अनिच्छतोऽपि पादौ धुनोति हसन्ती हसतः ॥’ इति च्छाया.

२. ‘ज्ञातो मर्येष सर्वो वृत्तान्तः सह चित्रफलकेन । तदेवै णिवेदयिष्यामि ।’ इति च्छाया.

शृङ्गराङ्गं भयनम् । यथा मैव—

‘अभिव्यक्तालीकः सकलविफलोपायविभव-  
श्चिरं ध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरम्भनिपुणम् ।  
इतः षष्ठे षष्ठे किमिदिति संत्रास्य सहस्रा  
कृताश्वेषं धूर्तः स्मितमधुरमालिङ्गति वथूम् ॥’

अथ नर्मस्फङ्गः—

नर्मस्फङ्गः सुखारम्भो भयान्तो नवसंगमे ।  
यथा मा ॥ १ ॥ इति इति संकेते नायकमभिसृतायां नायिकायां नायकः—

‘विसृज सुन्दरि संगमसावसं ननु चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे ।  
परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुक्तलताचरितं मयि ॥’

मालविका—भैष्णव, देवीए भयेण अत्तणो वि पिअं काउं ण पारेमि’ इत्यादि ।

अथ नर्मस्फ़ोटः—

नर्मस्फ़ोटस्तु भावानां सूचितोऽल्परसो लवैः ॥ ५१ ॥

यथा मालतीमाधवे—‘मकरन्दः—

गमनमलसं शून्या दृष्टिः शरीरमसौष्ठवं  
श्वसितमधिकं किं न्वेतत्स्यात्किमन्यदतोऽथ वा ।  
भ्रमति भुवने कन्दर्पज्ञा विकारि च यौवनं  
ललितमधुरास्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीरताम् ॥’

इत्यत्र गमनादिभिर्भावलेशैर्माधवस्य मालत्यामनुरागः स्तोकः प्रकाश्यते ।

अथ नर्मगर्भः—

छन्नेत्रप्रतीचारो नर्मगर्भोऽर्थेहतवे ।  
अङ्गैः सहास्यनिर्हास्यैरभिरेषात्र कैश्चिकी ॥ ५२ ॥

यथामरुशतके—

‘दृष्ट्वाकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-  
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छुलः ।

१. ‘नर्मस्फङ्गः’ इति पाठः. २. ‘भर्तः’, देव्या भयेनात्मनोऽपि प्रियं कर्तु न  
वारयामि’ इति च्छाया.

ईषद्वकितकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-  
 मन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥’  
 यथा प्रियर्दीशकायां गर्भाङ्के वत्सराजवेषसुसंगतास्थाने साक्षाद्वत्सराज-  
 प्रवेशः ।

अथ सत्त्वती—

विशोका सत्त्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयाजवैः ।  
 संलापोत्थापकावस्यां साङ्घात्यः परिवर्तकः ॥ ५३ ॥  
 शोकहीनः सत्त्वशौर्यत्यागदयाहृष्टिभावोत्तरो नायकव्यापारः सत्त्वती ।  
 तदङ्गानि च संलापोत्थापकसाङ्घात्यपरिवर्तकाख्यानि ।

तत्र—

संलापको गभीरोक्तिर्नानाभावरसा मिथः ।  
 यथा वीरचरिते—‘रामः—अयं स यः किल सपरिवारकार्तिकेयविज-  
 यावजितेन भगवता नीललोहितेन परिवत्सरसहस्रान्तेवासिने तुभ्यं प्रसादी-  
 कृतः परशुः । परथुरामः—राम राम दाशरथे, स एवायमाचार्यपादानां  
 प्रियः परशुः ।

शब्दप्रयोगखुरलीकलहे गणानां  
 सैन्यैर्वृतो विजित एव मया कुमारः ।  
 एतावतांपे परिरभ्य कृतप्रसादः

प्रादादमुं प्रियगुणो भगवान्गुरुर्मे ॥’

इत्यादिनानाप्रकारभावरसेन रामपरशुरामयोरन्योन्यगभीरवचसा संलाप इति ।

अथोत्थापकः—

उत्थापकस्तु यत्रादौ युद्धायोत्थापयेत्परम् ॥ ५४ ॥  
 यथा वीरचरिते—

‘आनन्दाय च विस्मयाय च मया दृष्टोऽसि दुःखाय वा  
 वैतृष्ण्यं नु कुतोऽव संप्रति मम त्वदर्शने चक्षुषः ।  
 त्वत्सांगत्यसुखस्य नास्मि विषयः किं वा बहुव्याहृतै-  
 रस्मिन्विश्रुतजामदद्यविजये बाहौ धनुर्जूम्भताम् ॥’

अथ साङ्घात्यः—

मन्त्रार्थैवशत्त्वादेः साङ्घात्यः सङ्घभेदनम् ।

१. ‘रसात्मकः’ इति पाठः.

मन्त्रशत्तया । यथा मुद्राराक्षसे राक्षससहायादीनां चाणक्येन स्ववुद्धच्चा  
भेदनम् । अर्थशत्तया तत्रैव । यथा पर्वतकाभरणस्य राक्षसहस्रगमनेन मलय-  
केनुसहोत्थायिभेदनम् । दैवशत्तया तु । यथा रामायणे रामस्य दैवशत्तया रा-  
वणाद्विभीषणस्य भेद इत्यादि ।

अथ परिवर्तकः—

**प्रारब्धोत्थानकार्यान्यकरणात्परिवर्तकः ॥ ५५ ॥**

प्रस्तुतस्योद्योगकार्यस्य परित्यगेन कार्यान्तरकरणं परिवर्तकः । यथा  
वीरचरिते—

‘हरम्बदन्तमुसलोह्लिगितैकभित्ति  
वक्षो विशाखविशिखवन्नलाञ्छनं मे ।

रोमाञ्चकञ्जुकितमद्भुतवीरलाभा-  
द्यत्सत्यमद्य परिरघुमिवेच्छर्ति त्वाम् ॥

रामः—भगवन्, परिरम्भणमिति प्रस्तुतप्रतीपमेतत् ।’ इत्यादि ।

सात्त्वतीमुपसंहरन्नाभभटीलक्षणमाह—

एभिरङ्गैश्चतुर्थेण सात्त्वत्यारभटी पुनः ।

मायेन्द्रजालसङ्घामकोषोऽग्रान्तादिचेष्टिः ॥ ५६ ॥

संक्षिप्तिका स्यात्संफेटो वस्तूत्थानावपातने ।

मायामन्त्रबलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनम् । तन्त्रबलादिन्द्रजालम् ।

तत्र—

**संक्षिप्तस्तुरचना संक्षिप्तिः शिलयोगतः ॥ ५७ ॥**

पूर्वनेत्रुनिवृत्त्यान्ये नेत्रन्तरपरिग्रहः ।

मृद्रुंशद्लचर्मादिद्रव्ययोगेन वस्तूत्थापनं संक्षिप्तिः । यथोदयनचरिते  
किलिङ्गहस्तिप्रयोगः । पूर्वनायकावस्थानिवृत्त्यावस्थान्तरपरिग्रहमन्ये संक्षि-  
प्तिकां मन्यन्ते । यथा वालिनिवृत्त्या सुग्रीवः । यथा च परशुरामस्योदृत्य-  
निवृत्त्या शान्तत्वापादनं ‘पुण्या ब्राह्मणजातिः—’ इत्यादिना ।

अथ संफेटः—

**संफेटस्तु समाधातः कुद्रसंबधयोर्द्वयोः ॥ ५८ ॥**

यथा माधवायोरघण्टयोर्मालतीमाधवे । इन्द्रजिल्लक्षणयोश्च रामायणप्र-  
तिबद्धवस्तुषु ।

अथ वस्तुत्थापनम्—

मायाद्युत्थापितं वस्तु वस्तुत्थापनमिष्यते ।  
यथोदात्तराघवे—

‘जीयन्ते जयिनोऽपि सान्द्रतिमिरत्रातैर्विद्युच्चापिभि-  
र्भस्वन्तः सकला रवेरपि रुचः कस्मादकस्मादभी ।  
एताश्रोग्रकबन्धरन्धरुधिरैराधमायमानोदरा  
मुञ्चन्त्याननकन्द्रानलमुच्चस्तीत्रा रवाः फेरवाः ॥’

इत्यादि ।

अथावपातः—

अवपातस्तु निष्कामप्रवेशत्रासविद्रवैः ॥ ५९ ॥  
यथा रत्नावल्याम्—

‘कण्ठे कृत्वावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्ष-  
न्कान्त्वा द्वाराणि हेलावलन्तरणवलत्किङ्गिणीचक्रवालः ।  
दत्तात्रेष्वृग्गो गजानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः  
प्रभ्रष्टोऽप्यं पूवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरातः ॥’  
नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाभावादकृत्वा त्रपा-  
मन्तः कञ्जुकिकञ्जुकस्य विशति त्रासादयं वामनः ।  
पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैः कृतं  
कुञ्जा नीचतयैव यान्ति शनैकरात्मेकणाशङ्किनः ॥’

यथा च प्रियदर्शनायां प्रथमेऽङ्गे विन्द्यकेत्ववस्कन्दे ।

उपसंहरति—

एभिरङ्गैश्चतुर्थेयं नार्थदृत्तिरतः परा ।  
चतुर्थी भारती सापि वाच्या नाटकलक्षणे ॥ ६० ॥  
कैशिकीं साच्चर्तीं चार्थदृत्तिमारभटीमिति ।  
पठन्तः पञ्चमीं दृत्तिमौद्ध्रयाः प्रतिजानते ॥ ६१ ॥  
सा तु लक्ष्ये कचिदपि न दृश्यते न चोपपद्यते रसेषु हास्यादीनां भार-  
त्यात्मकत्वात् । नीरसस्य च काव्यार्थस्य चाभावात् । तिस्रं एवैता अर्थदृ-  
त्तयः । भारती तु शब्ददृत्तिरामुखसङ्गत्वात्तत्रैव वाच्या ।

वृत्तिनियममाह—

शृङ्गारे कैश्की वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः ।

रसे रौद्रे च वीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती ॥ ६२ ॥

देशमेदभिन्नवेषादिस्तु नायकादिव्यापारः प्रवृत्तिरित्याह—

देशभाषाक्रियावेषलक्षणाः स्युः प्रवृत्तयः ।

लोकादेवीवगम्यैता यथौचित्यं प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥

तत्र पाठ्यं प्रति विशेषः—

पाठ्यं तु संस्कृतं नृणामनीचानां कृतात्मनाम् ।

लिङ्गिनीनां महादेव्या मत्रिजावेश्ययोः क्वचित् ॥ ६४ ॥

क्वचिदिति देवीप्रभृतीनां संबन्धः ।

स्त्रीणां तु प्राकृतं पायः सौरसेन्यधमेषु च ।

प्रकृतेरागतं प्राकृतम् । प्रकृतिः संस्कृतं तद्वत् तत्समं देशीत्यनेकप्रकारम् । सौरसेनी मागधी च स्वशास्त्रनियते ।

पिशाचात्यन्तनीचादौ पैशाचं मागधं तथा ॥ ६५ ॥

यद्देशं नीचपात्रं यत्तद्देशं तस्य भाषितम् ।

कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्यो भाषाव्यतिक्रमः ॥ ६६ ॥

स्पष्टार्थमेतत् ।

आमच्यामच्चकौचिल्येनामच्चणमाह—

भगवन्तो वरैर्वच्या विद्रोहर्पिलिङ्गिनः ।

विप्रामात्याग्रजाशार्या नटीमूत्रभृतौ मिथः ॥ ६७ ॥

आर्याविति संबन्धः ।

रथी सूतेन चायुष्मान्पूज्यैः शिष्यात्मजानुजाः ।

वत्सेति तातः पूज्योऽपि सुगृहीताभिधस्तु तैः ॥ ६८ ॥

अपिशब्दात्पूज्येन शिष्यात्मजानुजास्तातेति वाच्याः । सोऽपि तैस्तातेति सुगृहीतनामा चेति ।

१. ‘अधिगम्य’ ‘उपगम्य’ ‘अनुगम्य’ इति पाठाः २. ‘शूरसेनी’ ‘शौरसेनी’ इति पाठैः.

भावोऽनुगेन सूत्री च मार्षेत्येतेन सोऽपि च ।  
 सूत्रधारः पारिपार्थकेन भाव इति वक्तव्यः । स च सूत्रिणा मार्ष इति ।  
 देवः स्वामीति वृपतिर्भृत्यैर्भृतेति चाधमैः ॥ ६९ ॥  
 आमच्छ्रणीयाः पतिवज्ज्येष्टुमध्याधमैः ख्यियः ।  
 विद्वाहेवादिख्यियो भर्तृवदेव देवरादिभिर्वाच्याः ।  
 तत्र ख्यियं प्रति विशेषः ।  
 समा हलेति प्रेष्या च हङ्गे वेश्यांजुका तथा ॥ ७० ॥  
 कुटिन्यम्बेत्यनुगतैः पूज्या वा जरती जनैः ।  
 विदूषकेण भवती राज्ञी चेटीति शब्दवते ॥ ७१ ॥  
 पूज्या जरती अम्बेति । स्पष्टमन्यत् ।  
 चेष्टागुणोदाहृतिसच्चभावानशेषतो नेतृदशाविभिन्नान् ।  
 को वकुमीशो भरतो न यो वा यो वा न देवः शशिखण्डमौलिः ॥ ७२ ॥  
 दिज्ञात्रं दर्शितमित्यर्थः । चेष्टा लीलाद्याः, गुणा विनयाद्याः, उदाहृतयः  
 संस्कृतप्राकृताद्या उक्तयः, सत्त्वं निर्विकारात्मकं मनोभावः सत्त्वस्य प्रथमो  
 विकारस्तेन हावादयो ह्युपलक्षिताः ॥  
 इति श्रीविष्णुसूतोर्धनिकस्य हृतौ दशरूपाचलोके  
 नेतृप्रकाशो नाम द्वितीयः प्रकाशः समाप्तः ।

१. 'अर्जक' इति पाठः. २. 'कुटिन्यनुगतैः पूजा अम्बेति युवतीजनैः' इति पाठः.  
 ३. 'राज्ञा' इति पाठः.

तृतीयः प्रकाशः ।

बहुवक्तव्यतया रसविचारातिलङ्घनेन वस्तुनेतुरसानां विभज्य नाटकादिपूपयोगः प्रतिशब्दे ॥

प्रकृतिलादथान्येषां भूयो रमणिग्रहात् ।

संपूर्णलक्षणलाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते ॥ १ ॥

उद्दिष्टधर्मकं हि नाटकमनुद्दिष्टधर्माणां प्रकरणादीनां प्रकृतिः । शेषं प्रतीतम् ।

तत्र—

पूर्वरङ्गं विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते ।

प्रविश्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः ॥ २ ॥

पूर्वं रज्यतेऽस्मिन्निति पूर्वरङ्गो नाव्यशाला । तत्स्थप्रथमप्रयोगव्युत्थापनादौ पूर्वरङ्गता । तं विधाय विनिर्गते प्रथमं सूत्रधारे तद्वदेव वैष्णवस्थानकादिना प्रविश्यान्यो नटः काव्यार्थं स्थापयेत् । स च काव्यार्थस्थापनानुचनास्थापकः ।

दिव्यमर्त्ये स तद्वपो मिश्रमन्यतरस्तयोः ।

मूच्येदस्तु वीजं वा मुखं पात्रमथापि वा ॥ ३ ॥

स स्थापको दिव्यं वस्तु दिव्यो भूत्वा मर्त्यं च मर्त्यरूपो भूत्वा मिश्रं च दिव्यमर्त्ययोरन्यतरो भूत्वा सूचयेत् । वस्तु वीजं मुखं पात्रं वा । वस्तु मयोदात्तराधवे—

‘रामो मूर्धि निधाय काननमगान्मालामिवाज्ञां गुरो-

स्तद्भक्त्या भरतेन राज्यमखिलं मात्रा सैहवोऽग्निनम् ।

तौ गुरीविभीषणावनुगतौ नीतौ परां संपदं

प्रोद्वृत्ता दशकन्धरप्रभृतयो ध्वस्ताः समस्ता द्विषः ॥’

वीजं यथा रत्नावल्याम्—

‘द्रीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिर्धेदिशोऽप्यन्तात् ।

आनीय अठिति वटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥’

मुखं यथा—

‘आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः

प्रासः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः ।

उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं  
रामो दशास्यमिव संभृतबन्धुजीवः ॥'

पात्रं यथा शाकुन्तले—

‘तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।

एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरहसा ॥’

रङ्गं प्रसाद्य मधुरूः श्लोकैः काव्यार्थसूचकैः ।

ऋतुं कंचिदुपादाय भारतीं वृत्तिमाश्रयेत् ॥ ४ ॥

रङ्गस्य प्रशस्ति काव्यार्थानुगतार्थैः श्लोकैः कृत्वा—

‘औत्सुक्येन कृतत्वरा सहभुवा व्यावर्तमाना हिया

तैसौर्बन्धुवधूजनस्य वच्नैर्नीताभिमुख्यं पुनः ।

टञ्चाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे संगमे

संरोहत्पुलका हरेण हसता क्षिणा शिवा पातु वः ॥’

इत्यादिभिरेव भारतीं वृत्तिमाश्रयेत् ।

सा तु—

भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः ।

भेदैः प्ररोचनायुक्तैर्वीथीप्रहसनामुखैः ॥ ५ ॥

पुरुषविशेषप्रयोज्यः संस्कृतबहुलो वाक्प्रधानो नटाश्रयो व्यापारो भारती ।  
प्ररोचना वीथीप्रहसनामुखानि चास्यामङ्गानि ।

यथोद्देशं लक्षणमाह—

उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना ।

प्रस्तुतार्थप्रशंसनेन श्रोतृणां प्रवृत्त्युन्मुखीकरणं प्ररोचना । यथा रत्ना-  
वल्याम्—

‘श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी

लोके हारि च वत्सराजचरितं नाथ्ये च दक्षा वयम् ।

वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुन-

र्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वे गुणानां गणः ॥’

वीथी प्रहसनं चापि स्वप्रसङ्गेऽभिधास्यते ॥ ६ ॥

वीथ्यङ्गान्यामुखाङ्गलादुच्यन्तेऽत्रैव तत्पुनः ।

सूत्रधारो नर्टीं ब्रूते मार्षी वाथ विदूषकम् ॥ ७ ॥  
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्वा यत्तदामुखम् ।  
प्रस्तावना वा तत्र स्युः कथोद्धातः प्रहृत्कम् ॥ ८ ॥  
प्रयोगातिशयश्चाथ वीथ्यङ्गानि त्रयोदश ।

तत्र कथोद्धातः—

स्वेतिवृत्तसमं वाक्यमर्थं वा यत्र सूचिणः ॥ ९ ॥  
गृहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्धातो द्विधैव सः ।  
वाक्यं यथा रत्नावल्याम्—‘यौगंभरायणः—द्वीपादन्यमादणि—’  
इति ।

वाक्यार्थं यथा वेणीसंहरे—‘भीमः—

‘निर्वाणवैरिदहनाः प्रशमादरीणां  
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह केशवेन ।  
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च  
स्वस्था भवन्तु कुरुगजसुताः सभृत्याः ॥’

ततोऽर्थेनाह—‘भीमः—

लाक्षागृहानलविषाक्तसभाप्रवेशैः  
प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।  
आकृष्टपाण्डववधूपरिधानकेशाः  
स्वस्था भवन्तु मयि जीवनि धार्तराष्ट्राः ॥’

अथ प्रवृत्तकम्—

कालसाम्यसमाक्षिप्तप्रवेशः स्यात्प्रवृत्तकम् ॥ १० ॥  
प्रवृत्तकालसमानगुणवर्णनया सूचितपात्रप्रवेशः प्रवृत्तकम् । यथा—  
‘आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः  
प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः ।  
उत्त्वाय गाढतमसं घनकालमुग्रं  
रामो दशास्यमिव संभृतवन्धुजीवः ॥  
(ततः प्रविशति यथानिर्दिशे रामः ।)’

१. ‘वाक्यं वाक्यार्थमथवा प्रस्तुतं यत्र सूचिणः’ इति पाठः.

अथ प्रयोगातिशयः—

एषोऽयमित्युपक्षेपात्सूत्रधारप्रयोगतः ।

प्रयोगातिशयो मतः ॥ ११ ॥

यथा—‘एष राजेव दुष्ट्यन्तः’ इति ।

अथ वीथ्यङ्गानि—

उद्धात्यकावलगिते प्रपञ्चत्रिगते छलम् ।

वाकेल्यधिवले गण्डमवस्थनिदत्तनालिके ॥ १२ ॥

असत्प्रलापव्याहारमृदवानि त्रयोदश ।

तत्र—

गूढार्थपदपर्यायमाला प्रश्नोत्तरस्य वा ॥ १३ ॥

यत्रान्योन्यं समालापो द्वेषोद्धात्यं तदुच्यते ।

गूढार्थं पदं तत्पर्यायश्चेत्येवं माला । प्रश्नोत्तरं चेत्येवं वा माला । द्वयो-  
रुक्तप्रत्यक्षीं तद्विविधमुद्धात्यकम् । तत्राचं विक्रमोवश्यां यथा—‘विद्-  
पकः—भो वअस्म, को एसो कामो जेण तुमं पि दूमिज्जसे । सो कि  
युरिसो आदु इत्थिअ त्ति । राजा—सखे,

मनोजातिरनाधीना सुखेष्वेव प्रवर्तते ।

स्त्रेहस्य ललितो मार्गः काम इत्यभिधीयते ॥

विदूपकः—ऐं पि ण जाणे । राजा—वयस्य, इच्छाप्रभवः स इति ।

विदूपकः—किं जो जं इच्छदि सो तं कामेदित्ति । राजा—अथ किम् ।

विदूपकः—ताँ जाणिदं जह अहं सूअभारसालाए भोअणं इच्छामि ।

द्वितीयं यथा पाण्डवानन्दे—

‘का श्लाघ्या गुणिनां क्षमा परिभवः कौयः स्वकुल्यैः कृतः

किं दुःखं परसंश्रयो जगति कः श्लाघ्यो य आश्रीयते ।

१. ‘भो वयस्य, क एष कामो येन त्वमपि दूयसे । स किं पुरुषोऽथवा स्त्रीनि ।’ इति च्छाया.
२. ‘एवमपि न जानामि ।’ इति च्छाया.
३. ‘किं यो यदिच्छाति स तज्जामयनीनि ।’ इति च्छाया.
४. ‘तज्जातं यथाहं सूपकारशालायां भोजन-मिच्छामि ।’ इति च्छाया.

को मृत्युर्ब्यसनं शुचं जहति के यैर्निर्जिताः शत्रवः  
कैर्विज्ञातमिदं विराटनगे छन्नस्थितैः पाण्डवैः ॥’

अथावलगितम्—

यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते ॥ १४ ॥  
प्रस्तुतेऽन्यत्र वान्यत्स्यात्चावलगितं द्विधा ।

तत्रायं यथोत्तरचरिते समुत्पन्नवनविहारगर्भदोहदायाः सीताया दोह-  
दकार्येऽनुप्रविश्य जनापवादादर्थे त्यागः । द्वितीयं यथा छलितरामे—  
‘रामः—लक्ष्मण, तात वियुक्तामयोऽयां विमानस्थो नाहं प्रवेष्टुं शक्नोमि ।  
तदवनीर्य गच्छामि ।

कोऽपि भिंहागनस्याधः स्थितः पादुकयोः पुरः ।  
जटावानक्षमाली च चामरी च विराजते ॥’

इति भरतदर्शनकार्यसिद्धिः ।

अथ प्रपञ्चः—

असद्गृतं मिथःस्तोत्रं प्रपञ्चो हास्यकृन्मतः ॥ १५ ॥  
असद्गृतेनार्थेन पारदार्यादिनैषुण्यादिना यान्योन्यस्तुतिः स प्रपञ्चः ।  
यथा कर्पूरमञ्जर्याम्—‘भैरवानन्दः—  
रण्डा चण्डा दिक्षिवदा धम्मदारा मञ्जं मंसं विज्जए खज्जए अ ।  
मिक्षा भोजं चमखण्डं च सेज्जा कोलो धम्मो कस्स णो होइ रम्मो ॥’

अथ त्रिगतम्—

श्रुतिसाम्यादनेकार्थयोजनं त्रिगतं लिह ।  
नटादित्रितयालापः पूर्वरङ्गे तदिष्यते ॥ १६ ॥

यथा विक्रमोर्वश्याम्—

‘मत्तानां कुसुमरसेन पटपदानां  
शब्दोऽयं परभृतनादं एष धीरः ।  
कैलासे सुरगणसेविते समन्ता-  
त्किन्नर्यः कलमधुराक्षरं प्रगीताः ॥’

१. ‘असद्गृतमिथःस्तोत्रं’ इति पाठः.

२. ‘रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मशारा मयं मांसं पीयते खायते च ।

मिक्षा भोज्यं चमखण्डं च शश्या कोलो धर्मः कस्स न भवति रम्यः ॥’ इति  
च्छाया.

अथ छलनम्—

प्रियाभैरप्रियैर्वा कर्यविलोभ्य छलनाच्छलम् ।  
यथा वेणीसंहारे—‘भीमार्जुनौ—  
कर्ता व्यूतच्छलानां जतुमयशरणोदीपनः सोऽभिमानी  
राजा दुःशासनादेगुरुनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रम् ।  
कृष्णकेशोत्तरीयव्यपनयनपदुः पाण्डवा यस्य दासाः  
कास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत पुरुषा द्रष्टुमभ्यागतौ खः ॥’

अथ वाकेली—

विनिवृत्त्यास्य वाकेली द्विष्ठिः प्रत्युक्तितोऽपि वा ॥ १७ ॥  
अस्येति वाक्यस्य प्रकान्तस्य साकाङ्गस्य विनिवर्तनं वाकेली । द्वित्रिवा  
उक्तिप्रत्युक्तयः । तत्राद्या यथोत्तरचरिते—‘वासन्ती—  
त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं  
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ।  
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरूप्य मुग्धां  
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥’

उक्तिप्रत्युक्तितो यथा रत्नावल्याम्—‘विदूषकः—भोदि मअणिए,  
मं पि एंद्रं चच्चरिं सिक्खवावेहि । मदनिका—हैदास, ण क्खु एसा चच्चरी ।  
दुविद्युष्टं अं क्खु एदम् । विदूषकः—भोदि, कि एदिणा खण्डेण  
मोदआ करीअन्ति । मदनिका—एंहि । पटीअदि क्खु एदम् ।’ इत्यादि।

अथाधिबलम्—

अन्योन्यवाक्याधिक्योक्तिः स्पर्ध्याधिबलं भवेत् ।  
यथा वेणीसंहारे—‘अर्जुनः—  
सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते  
तृणमिव परिभूतो यस्य गर्वेण लोकः ।  
रणशिरसि निहन्ता तस्य राधासुतस्य  
प्रणमति पितरौ वां मध्यमः पाण्डुपुत्रः ॥’

१. ‘छलना’ इति पाठः.
२. ‘भवति मदनिके, मामप्येतां चर्चरीं शिक्षय ।’ इति च्छाया.
३. ‘हताश, न खल्वेषा चर्चरी । द्विपदीखण्डकं खल्वेतत् ।’ इति च्छाया.
४. ‘भवति, किमेतेन खण्डेन मोदकाः कियन्ते ।’ इति च्छाया.
५. ‘नहि । पश्यन्ते खल्वेतत् ।’ इति च्छाया.

इत्युपक्रमे 'राजा—अरे, नाहं भवानिव विक्तथनाप्रगल्भः । किंतु ।

द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुं बान्धवास्त्वां रणाङ्गणे ।

मद्दामिल्लवक्षोऽस्थिवेणिकाभङ्गभीषणम् ॥'

इत्यन्तेन भीमदुर्योधनयोरन्यवाक्यस्याधिक्योक्तिरधिबलम् ।

अथ गण्डः—

गण्डः प्रस्तुतसंबन्धिभिन्नार्थं सहसोदितम् ॥ १८ ॥

यथोत्तरचरिते—'रामः—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनेयनयो-

रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्वन्दनरसः ।

अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्किकसरः

किमस्या न प्रेयो यदि परमसद्यम्भुत्वा विरहः ॥

(प्रविश्य ।) प्रतीहारी—देव, उअतिथिदो । रामः—अयि, कः । प्रती-  
हारी—देवस्स आसण्णपरिचारओ दुम्मुहो ।' इति ।

अथावस्यन्दितम्—

रसोक्तस्यान्यथा व्याख्या यत्रावस्यन्दितं हि तत् ।

यथा छलितरामे—'सीता—जाद, कलं कखु तुझेहि अजुज्जाए ग-  
न्तव्यम् । तर्हि सो राजा विणएण णमिदव्वो । लवः—अन्न, किमावाभ्यां  
गाजोपजीविभ्यां भवितव्यम् । सीता—जाद, सो कखु तुम्हाणं पिदा ।  
लवः—किमावयो रघुपतिः पिता । सीता—(साशङ्कम् ।) जाद, ण कखु  
परं तुम्हाणम् । सअलाए जेव युहवीए ।' इति ।

अथ नालिका—

सोपहासा निगृदार्था नालिकैव प्रहेलिका ॥ १९ ॥

यथा मुद्राराक्षसे—'चरः—'हंहो वक्षण, मा कुप्प । किं पि तुह

१. 'देव, उपस्थितः ।' इति च्छाया.
२. 'देवस्यासनपरिचारको दुर्मुखः ।' इति च्छाया.
३. 'जात, कल्यं खलु युवाभ्यामयोऽयायां गन्तव्यम् । तर्हि स राजा वि-  
नयेन नमितव्यः ।' इति च्छाया.
४. 'जात, स खलु युवयोः पिता ।' इति च्छाया.
५. 'जात, न खलु परं युवयोः । सकलाया एव पृथिव्याः ।' इति च्छाया.
६. 'हंहो वक्षण, मा कुप्प । किमपि तवोपाध्यायो जानाति । किमप्यस्मादशा जना जानन्ति ।'  
इति च्छाया.

उअज्ञाओ जाणादि । किं पि अत्याग्मा जणा जाणन्ति । शिष्यः—  
किमस्मदुपाध्यायस्य सर्वज्ञत्वमपहर्तुमिच्छसि । चरः—यैदि दे उवज्ञाओ  
सवं जाणादि ता जाणादु दाव कस्स चन्दो अणभिष्पेदो त्ति । शिष्यः—  
किमनेन ज्ञातेन भवति । इत्युपक्रमे ‘चाणक्यः—चन्द्रगुप्तादपरकान्पुर-  
पाञ्जानामि ।’ इत्युक्तं भवति ।

अथासत्प्रलापः—

**असंबद्धकथाप्रायोऽसत्प्रलापो यथोत्तरः ।**

ननु चासंबद्धार्थत्वेऽसंगतिर्नाम वाक्यदोष उक्तः । तत्र । उत्स्वप्ना-  
यितमदोन्मादशैशवादीनामसंबद्धप्रलापितैव विभावः । यथा—

‘अर्चिष्मनित विदार्य वक्तुहराण्यास्तुक्तो वासुके-  
रङ्गुल्या विषकर्वुरान्गनयतः संपृश्य दन्ताङ्गुरान् ।  
एकं त्रीणि नवाष्ट सप्त पडिति प्रवृत्तमनंग्याक्रमा  
वाचः क्रौञ्चरिपोः शिशुत्वविकलाः श्रेयांसि पुष्णन्तु वः ॥’

यथा च—

‘हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिस्तस्यास्त्वया हृता ।  
विभाविनैकदेशेन देयं यद्भियुज्यते ॥’

यथा वा—

‘भुक्ता हि मया गिरयः स्नातोऽहं वह्निना पिबामि वियत् ।  
हरिहरहिरण्यगर्भा मत्पुत्रास्तेन नृत्यामि ॥’

अथ व्याहारः—

**अन्यार्थमेव व्याहारो हास्यलोभकरं वचः ॥ २० ॥**

यथा मालविकाश्मित्रे लास्यप्रयोगावसाने—‘(मालविका निर्गन्तुमिच्छति ।)  
विदूषकः—मैं दाव । उवएससुद्धा गमिस्ससि।’ इत्युपक्रमे ‘गणदासः—  
(विदूषकं प्रति ।) आर्य, उच्यतां यस्त्वया क्रमभेदो लक्षितः । विदूषकः—  
पैदुमं पञ्चूसे ब्रह्मणस्स पूजा भोदि । सा तए लङ्घिदा । (मालविका स्मयते ।)’

१. ‘यदि त उपाध्यायः सर्वं जानाति तज्जानातु तावत्कस्य चन्द्रोऽनभिप्रेत इति ।’  
इति च्छाया. २. ‘यथोत्तरम्’ इति पाठः. ३. ‘मा तावत् । उपदेशशुद्धा गमिष्यसि ।’  
इति च्छाया. ४. ‘प्रथमं प्रत्यूषे ब्राह्मणस्य पूजा भवति । सा तया लङ्घिता ।’ इति  
च्छाया.

इत्यादिना नायकस्य विश्रव्धनाधिकादर्शनप्रयुक्तेन हास्यलोभकारिणा वच-  
नेन व्याहारः ।

अथ मृदवम्—

दोषा गुणा गुणा दोषा यत्र स्युर्मुदवं हि तत् ।

यथा शाकुन्तले—

‘मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः

सत्त्वानामुपलक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।

उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यनित लक्ष्ये चले

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीद्विविनोदः कुतः ॥’

इति मृगयादोषस्य गुणीकारः ।

यथा च—

‘सततमनिर्वृतमानसमायाससहस्रसंकुलक्ष्मिष्टम् ।

गतनिद्रमविद्धासं जीवति राजा जिगीषुरयम् ॥’

इति राज्यगुणस्य दोषीभावः ।

उभयं वा—

‘सन्तः सच्चरितोदयव्यसनिनः प्रादुर्भवव्यच्चणाः

सर्वत्रैव जनापवादचकिता जीवन्ति दुःखं सदा ।

अव्युत्पन्नमतिः कृतेन न सता नैवासता व्याकुलो

युक्तायुक्तविवेकशून्यहृदयो धन्यो जनः प्राकृतः ॥’

इति प्रस्तावनाङ्गानि ।

एषामन्यतमेनार्थं पात्रं चाक्षिप्य सूत्रभृत् ॥ २१ ॥

प्रस्तावनान्ते निर्गच्छेत्ततो वस्तु प्रपञ्चयेत् ।

तत्र—

अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान् ॥ २२ ॥

कीर्तिकामो महोत्साहस्रव्याख्याता महीपतिः ।

प्रख्यातवंशो राजर्थिर्दिव्यो वा यत्र नायकः ॥ २३ ॥

तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् ।

१. ‘अभिगामि’, ‘अधिगम्य’ इति पाठौ.

यत्रेतिवृत्ते सत्यवागसंवादकारिनीतिशास्त्रप्रसिद्धाभिगमिकादिगुणयुक्तो  
रामायणमहाभागतादिप्रमिद्धो धीरोदात्तो राजर्थिर्दिव्यो वा नायकस्तप्रस्त्या-  
त्मेवात्र नाटक आधिकारिकं वस्तु विधेयमिति ।

यत्तत्रानुचितं किंचिद्बायकस्य रसस्य वा ॥ २४ ॥

विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।

यथा छद्मना वालिवधो मायुगजेनोदात्तराघवे परित्यक्तः ।

वीरचरिते तु रावणसौहेदेन वाली रामरामेगनो रामेण हत इत्य-  
न्यथा कृतः ।

आद्यन्तयेवं निश्चित्य पञ्चधा तद्विभज्य च ॥ २५ ॥

खण्डशः संधिसंज्ञांश्च विभागानपि खण्डयेत् ।

अनौचित्यरसविरोधपरिहारपरिशुद्धीकृतसूचनीयदर्शनीयवस्तुविभागफ-  
लानुसारेणोपकृत्सबीजविन्दुपताकाप्रकरीकार्यलक्षणार्थप्रकृतिकं पञ्चावस्थानु-  
गुण्येन पञ्चधा विभजेत् । पुनरपि चैकैकस्य भागस्य द्वादश त्रयोदश च-  
तुर्दशेत्यवमङ्गसंज्ञानां संधीनां विभागान्कुर्यात् ।

चतुःषष्ठिस्तु तानि स्युरङ्गानीत्यपरं तथा ॥ २६ ॥

पताकावृत्तमप्यूनमेकाद्यैरनुसंधिभिः ।

अङ्गान्यत्र यथालाभमसंधिं प्रकरीं न्यसेत् ॥ २७ ॥

अपरमपि प्रासङ्गिकमितिवृत्तमेकाद्यैरनुसंधिभिर्न्यूनमिति प्रधानेतिवृत्ता-  
देकद्वित्रिचतुर्भिरनुसंधिभिर्नूनं पताकेतिवृत्तं न्यसनीयम् । अङ्गानि च प्र-  
धानाविरोधे यथालाभं न्यसनीयानि । प्रकरीतिवृत्तं त्वपरिपूर्णसंधि विधेयम् ।

तत्रैवं विभक्ते—

आदौ विष्कम्भकं कुर्यादङ्कं वा कार्ययुक्तिः ।

इयमत्र कार्ययुक्तिः ।

अपेक्षितं परित्यज्य नीरसं वस्तुविस्तरम् ॥ २८ ॥

यदा संदर्शयेच्छेषं कुर्याद्विष्कम्भकं तदा ।

यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते ॥ २९ ॥

आदावेव तदाङ्कः स्यादामुखाक्षेपसंश्रयः ।

स च—

प्रत्यक्षनेतृचरितो विन्दुव्यासिपुरस्कृतः ॥ ३० ॥

अङ्गो नानाप्रकारार्थसंविधानरसाश्रयः ।

रङ्गप्रवेशे साक्षात्तिर्दिश्यमाननायकव्यापारो विन्दूप्रक्षेपार्थपरिमितोऽनेक-  
प्रयोजनसंविधानरसाधिकरण उत्सङ्ग इवाङ्गः ।

तत्र च—

अनुभावविभावाभ्यां स्थायिना व्यभिचारिभिः ॥ ३१ ॥

गृहीतमुक्तैः कर्तव्यमङ्गिनः परिपोषणम् ।

अङ्गिन एवाङ्गिरसस्थायिनः संग्रहात्तस्थायिनेति रसान्तरस्थायिनो ग्रह-  
णम् । गृहीतमुक्तैः परस्परव्यतिकौर्णेत्यर्थः ।

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत् ॥ ३२ ॥

रसं वा न तिरोदध्याद्रस्तलंकारलक्षणैः ।

कथासंध्यङ्गोपमादिलक्षणैर्मूषणादिभिः ।

एङ्गो रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीरः शृङ्गार एव वा ॥ ३३ ॥

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यात्तिर्वहणेऽङ्गुतम् ।

ननु च रसान्तरस्थायिनेत्यनेतैर रसान्तराणमङ्गत्वमुक्तम् । तत्र । यत्र  
रसान्तरस्थायी स्यानुभावविभावव्यभिचारियुक्तो भूयसोपनिवेत्यते तत्र रसा-  
न्तराणमङ्गत्वम् । केवलस्थाययुपनिवन्ये तु स्थायिनो व्यभिचारितैव ।

दूराद्वानं वर्धं युद्धं राज्यदेशादिविष्टवम् ॥ ३४ ॥

संरोधं भोजनं स्लानं सुरतं चानुलेपनम् ।

अंम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् ॥ ३५ ॥

अङ्गैर्नैवोपनिवन्नीत प्रवेशकादिभिरेव सूचयेदित्यर्थः ।

नाधिकारिवर्धं कापि त्याज्यमावश्यकं न च ।

अधिकृतनायकवर्धं प्रवेशकादिनापि न सूचयेत् । आवश्यकं तु देवपि-  
तृकार्याद्यवश्यमेव क्वचित्कुर्यात् ।

एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम् ॥ ३६ ॥

पात्रैखिचतुरैरङ्गं तेषामन्तेऽस्य निर्गमः ।

१. ‘अस्त्रस्य’ इति पाठः २. ‘तैः कार्यम्’ इति पाठः.

एकदिवसप्रवृत्तैकप्रयोजनसंबद्धमासनायकमबहुपात्रप्रवेशमङ्गं कुर्यात् ।  
तेषां पात्राणामवश्यमङ्गस्थान्ते निर्गमः कार्यः ।

पताकास्थानकान्यत्र बिन्दुरन्ते च वीजवत् ॥ ३७ ॥

एवमङ्गः प्रकर्तव्याः प्रवेशादिपुरस्कृताः ।

पञ्चाङ्गमेतदवरं दशाङ्गं नाटकं परम् ॥ ३८ ॥

इत्युक्तं नाटकलक्षणम् ।

अथ प्रकरणे दृच्छुपुत्पाद्यं लोकसंश्रयम् ।

अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम् ॥ ३९ ॥

धीरप्रशान्तं सापायं धर्मकामार्थतत्परम् ।

शेषं नाटकवत्संथिप्रवेशकरसादिकम् ॥ ४० ॥

कविद्विविरचितमितिवृत्तम् । लोकसंश्रयमनुदात्तममात्याद्यन्यतम-  
धीरप्रशान्तनायकं विपद्न्तरितार्थसिद्धिं कुर्यात् । प्रकरणे मन्त्री अमात्य एव ।  
सार्थवाहो वणिग्निशेष एवेति । स्पष्टमन्यत् ।

नायिका तु द्विधा नेतुः कुलस्त्री गणिका तथा ।

कचिदेकैव कुलजा वेश्या कापि द्रव्यं कचित् ॥ ४१ ॥

कुलजाभ्यन्तरा वाहा वेश्या नातिक्रमोऽनयोः ।

आभिः प्रकरणं त्रेधा संकीर्णं धूर्तसंकुलम् ॥ ४२ ॥

वेशो भृतिः सोऽस्या जीवनमिति वेश्या । तद्विशेषो गणिका । य-  
दुक्तम्—

‘आभिरभ्यर्थिता वेश्या रूपशीलगुणान्विता ।

लभते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥’

एवं च कुलजा वेश्या उभयमिति त्रेधा प्रकरणे नायिका । यथा वेश्यैव  
तरङ्गदत्ते कुलजैव पुष्पदूधितके । ते द्वेऽपि मृच्छकटिकायामिति । कितव-  
शूतकारादिधूर्तसंकुलं तु मृच्छकटिकादिवत्संकीर्णप्रकरणमिति ।

अथ नाटिका—

लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्णान्यनिवृत्तये ।

१. ‘सोपायं’ इति पाठः.

अत्र केचित्—

‘अनयोश्च बन्धयोगदेको भेदः प्रयोकृभिर्ज्ञेयः ।  
प्रस्थ्यातस्त्वितरो वा नाटीसंज्ञाश्रिते काव्ये ॥’

इत्यमुं भरतीयं श्लोकमेको भेदः प्रस्थ्यातो नाटिकास्थ्य इतरस्त्वप्रस्थ्यातः प्रकरणिकासंज्ञो नाटीसंज्ञया हे काव्ये आश्रिते इति व्याचनाणाः प्रकरणिकामपि मन्यन्ते । तदसत् । उद्देशलक्षणयोरनभिशानात्ममानलक्षणत्वे वा भेदाभावात् । वस्तुरसनायकानां प्रकरणाभेदात्प्रकरणिकायाः । अतोऽनुहिताया नाटिकाया यन्मुनिना लक्षणं कृतं तत्रायमभिप्राप्तः । शुद्धलक्षणसंकरादेव तद्लक्षणे सिद्धे लक्षणकरणं संकीर्णानां नाटिकैव कर्तव्येनि नियमार्थं विज्ञायते ।

तमेव संकरं दर्शयति—

तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः ॥ ४३ ॥

प्रस्थ्यातो धीरललितः शृङ्गारोऽङ्गी सलक्षणः ।

उत्पादेतिवृत्तत्वं प्रकरणर्थः प्रस्थ्यातनृपनायकादित्वं तु नाटकः यम इति । एवं च नाटकप्रकरणनाटिकातिरिकेण वस्त्वादेः प्रकरणिकायामभावादङ्गपात्रभेदाङ्गादि भेदः ।

तत्र—

स्त्रीप्रायचतुरङ्गादिभेदकं यदि चेष्यते ॥ ४४ ॥

एकद्वित्र्यङ्गपात्रादिभेदेनानन्तरूपता ।

तत्र नाटिकेति स्त्रीसमास्ययौचित्यप्राप्तं स्त्रीप्रधानत्वम् । कैशिकीवृत्त्याश्रयत्वाच्च तदङ्गसंस्थयाल्पावमशर्त्वेन चतुरङ्गत्वमप्यौचित्यप्राप्तमेव ।

विशेषस्तु—

देवी तत्र भवेज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ॥ ४५ ॥

गम्भीरा मानिनी कृच्छ्रातद्वशान्नेतुसंगमः ।

प्राप्या तु—

नैयिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ॥ ४६ ॥

तादृशीति नृपवंशजत्वादिपर्मातिदेशः ।

अन्तःपुरादिसंबन्धादासना श्रुतिदर्शनैः ।

१. ‘संगमे’ इति पाठः २. ‘प्राप्यान्या’ इति पाठः.

अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ॥ ४७ ॥

नेता तत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शङ्कितः ।

तस्यां सुभ्रनाथिकायामन्तःपुरसंबन्धसंगीतकसंबन्धादिना प्रत्यासन्नायां नायकस्य देवीप्रतिबन्धान्तरित उत्तरोत्तरो नवावस्थानुरागो निबन्धनीयः ।

कैश्चिक्यङ्गैश्चतुर्भिंश्च युक्ताङ्गैरिव नाटिका ॥ ४८ ॥

प्रत्यङ्गोपनिवद्धभिहितलक्षणकैश्चिक्यङ्गचतुष्टयवती नाटिकेति ।

अथ भाणः—

भाणस्तु धूर्तचरितं स्वानुभूतं परेण वा ।

यत्रोपवर्णयेदेको निषुणः पण्डितो विटः ॥ ४९ ॥

संबोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितः ।

सूचयेद्विरशृङ्गारौ शौर्यसौभाग्यसंस्तवैः ॥ ५० ॥

भूयसा भारती वृत्तिरेकाङ्क्षं वस्तु कल्पितम् ।

मुखनिर्वहणे साङ्गे लास्याङ्गानि दशापि च ॥ ५१ ॥

धूर्तश्चैरवृत्तकारादयस्तेषां चरितं यत्रैक एव विटः स्वकृतं परकृतं वोप-वर्णयति स भारतीवृत्तिप्रधानत्वाङ्गाणः । एकस्य चोक्तिप्रत्युक्त्य आकाश-भाषितैरशङ्कितोत्तरत्वेन भवन्ति । अस्पष्टत्वाच्च वीरशृङ्गारौ सौभाग्यशौर्यो-पवर्णनया सूचनीयौ ।

लास्याङ्गानि—

गेयं पदं स्थितं पाठ्यमासीनं पुष्पगण्डिका ।

प्रच्छेदकत्तिगृहं च सैन्यवाख्यं द्विगृहकम् ॥ ५२ ॥

उत्तमोत्तमकं चैव उक्तप्रत्युक्तमेव च ।

लास्ये दशविधं हेतदङ्गनिर्देशकेल्पनम् ॥ ५३ ॥

शेषं स्पष्टमिति ।

अथ प्रहसनम्—

तद्वप्त्वासनं त्रेधा शुद्धवैकृतसंकरैः ।

तद्वदिति भाणवद्वस्तुसंधिसंध्यङ्गलास्यादीनामतिदेशः ।

तत्र शुद्धं तावत्—

१. ‘चान्यदुक्त’ इति पाठः. २. ‘लक्षणम्’ इति पाठः.

पाखण्डविप्रभृतिचेटीविटाकुलम् ॥ ५४ ॥

चेष्टितं वेर्षभाषाभिः शुद्धं हास्यवचोन्वितम् ।

पाखण्डिनः शाक्यनिर्ग्रन्थप्रभृतयः । विप्राश्वात्यन्तमृजवः । जातिमात्रो-  
पनीविनो वा । प्रहसनाङ्गिहास्यविभावास्तेषां च यथात्रस्वव्यापागोपनिव-  
न्वनं चेटचेटीव्यवहारयुक्तं शुद्धं प्रहसनम् ।

विकृतं तु—

कामुकादिवचोवेषैः षट्कञ्चुकितापसैः ॥ ५५ ॥

विकृतं संकरादीश्या संकीर्णं धूर्तसंकुलम् ।

कामुकादयो भुजङ्गचारभयाद्याः । नदेणामागादिगोगिनो यत्र षट्कञ्चु-  
कितापमयृद्वादयस्तद्विकृतम् । स्वस्वरूपप्रच्युतविभावत्वात् । वीश्यङ्गम्नु-  
संकीर्णत्वात्संकीर्णम् ।

रसस्तु भूयसा कार्यैः षड्बिंधो हास्य एव तु ॥ ५६ ॥

इति स्पष्टम् ।

अथ डिमः—

डिमे वस्तु प्रसिद्धं स्याद्वृत्तयः कैशिकीं विना ।

नेतारो देवगन्धर्वयक्षरक्षीमहोरगाः ॥ ५७ ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यन्तमुद्रताः ।

रसैरहास्यशृङ्गारैः षड्भिर्दीर्षैः समन्वितः ॥ ५८ ॥

मायेन्द्रजालसंग्रामकोथोऽन्तादिचेष्टितैः ।

चन्द्रमूर्योपरागैश्च न्याय्ये रौद्ररसेऽङ्गिनि ॥ ५९ ॥

चतुरङ्गश्चतुःसंघिनिविमर्शो डिमः स्मृतः ।

डिमसंशात् इति नायकसंचातव्यापारात्मकत्वाङ्गिमः । तत्रेतिहासप्रसिद्ध-  
मितिवृत्तम् । वृत्तयश्च कैशिकीवर्जनात्तिस्तः । रसाश्च वीररौद्रवीभत्साङ्गतक-  
रणभयानकाः षट् । स्थायी तु रौद्रो न्यायप्रधानो विमर्शरहिता मुखप्रति-  
मुखगर्भनिर्वहणात्याश्रत्वारः संधयः साङ्गाः । मायेन्द्रजालाद्यनुभावसमाप्त-  
याः । शेषं प्रस्तावादिनाटकवत् । एतच्च—

१. ‘वेषभाषादि,’ ‘देशभाषादि’ इति पाठौ.

‘इदं त्रिपुरदाहे तु लक्षणं ब्रह्मणोऽनम् ।  
तत्खिपुरदाहश्च डिमसंज्ञः प्रयोजितः ॥’

इति भरतमुनिना स्वयमेव त्रिपुरदाहेतिवृत्तस्य तुल्यत्वं दर्शितम् ।

अथ व्यायोगः—

स्वयातेतिष्ठतो व्यायोगः स्वयातोङ्गतनराश्रयः ॥ ६० ॥

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्दिमवद्दापाः ।

अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो जामदग्धयजये यथा ॥ ६१ ॥

एकाहाचरितैकाङ्क्षो व्यायोगो वहुभिर्नरैः ।

व्यायुज्यन्तेऽस्मिन्बहवः पुरुषा इति व्यायोगः । तत्र डिमवद्दापाः पट्ट हास्यशृङ्खारहिताः । वृत्त्यात्मकत्वाच्च रसानामवच्चनेऽपि कैशिकीरहिते-तरवृत्तित्वं रसवदेव लभ्यते । अस्त्रीनिमित्तश्चात्र संग्रामः । यथा परशुरा-मेण पितृवधकोपात्सहस्रार्जुनवधः कृतः । शेषं स्पष्टम् ।

अथ समवकारः—

कार्यं समवकारेऽपि आमुखं नाटकादिवत् ॥ ६२ ॥

स्वयातं देवामुरं वस्तु निर्विमर्शास्तु संधयः ।

दृत्यो मन्दकैशिक्यो नेतारो देवदानवाः ॥ ६३ ॥

द्वादशोदात्तविस्वयाताः फलं तेषां पृथक्पृथक् ।

बहुवीरसाः सर्वे यद्वद्भोधिमन्थने ॥ ६४ ॥

अङ्केखिभिस्त्रिकपटस्त्रिशृङ्खारस्त्रिविद्रवः ।

द्विसंधिरङ्कः प्रथमः कार्यो द्वादशनालिकः ॥ ६५ ॥

चतुर्द्विनालिकावन्त्यौ नालिका घटिकाद्यम् ।

वस्तुस्य भावदैवारिकृताः स्युः कपटास्वयः ॥ ६६ ॥

नगरोपरोधयुद्धे वाताश्यादिकविद्रवाः ।

धर्मार्थकामैः शृङ्खारो नात्र विन्दुप्रवेशकौ ॥ ६७ ॥

वीथ्यङ्गानि यथालाभं कुर्यात्प्रहसने यथा ।

समवकीर्यन्तेऽस्मिन्बर्था इति समवकारः । तत्र नाटकादिवामुगमि ।

१. ‘नालिकः’ इति पाठः. २. ‘नालिका’ इति पाठः.

ममस्तरूपकाणामामुखप्रापणम् । विमर्शवर्जिताशत्वारः संघयः । देवामुग-  
दयो द्वादशनायकाः । तेषां च फलानि पृथक्कृपयमवन्ति । यथा समुद्रम-  
न्धेने वामुदेवादीनां लङ्घ्यादिलाभाः । वीरश्चाङ्गी । अङ्गभूताः सर्वे रसाः ।  
त्रयोऽङ्गाः । तेषां प्रथमो द्वादशनालिकानिर्वृत्तेनि वृत्तप्रमाणः । यथासंघयं  
चतुर्द्विनालिकावन्त्यौ नालिका च चटिकाद्यम् । प्रत्यक्षं च यथासंघयं क-  
पयः । तथा नगरोऽप्युद्धताताङ्गादिविद्वाणां मध्य एके को विद्रवः  
कार्यः । धर्मार्थकामशृङ्खागणमेकैकं शृङ्खारः । प्रत्यक्षमेव विधातव्यः ।  
शीघ्रज्ञानि च यथालाभं कार्यग्नि । विन्दुप्रवेशकौ नाटकोक्तावपि न वि-  
धातव्यौ । इत्ययं समवकारः ।

अथ वीथी—

वीथी तु कैश्चिकीवृत्तौ संघ्यज्ञाक्षेस्तु भाणवत् ॥ ६८ ॥

रसः सूच्यस्तु शृङ्खारः स्पृशेदपि रसान्तरम् ।

युक्ता प्रस्तावनाख्यातैरङ्गैरुद्वात्यकादिभिः ॥ ६९ ॥

एवं वीथी विधातव्या द्व्येकपात्रप्रयोजिता ।

वीथीवद्वीथीमांडङ्गानां पङ्किर्वा भाणवत्कार्या । विशेषस्तु रसः शृ-  
ङ्खारोऽपरिपूर्णत्वाद्युपसा सूच्यः । रसान्तराख्यपि स्तोकं स्पर्शनीयानि ।  
कैश्चिकी वृत्ती रसौचित्यादेवेति । शेषं स्पष्टम् ।

अथेङ्गः—

उत्स्थितिकाङ्क्षे प्रख्यातं वृत्तं बुद्ध्या प्रपञ्चयेत् ॥ ७० ॥

रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः ।

भाणवत्संधिवृत्त्यज्ञैर्युक्तः स्त्रीपरिदेवितैः ॥ ७१ ॥

वाचा युद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ ।

उत्स्थितिकाङ्क्ष इति नाटकान्तर्गताङ्कव्यवच्छेदार्थम् । शेषं प्रतीतमिति ।

अथेहामुगः—

मिश्रमीहामृगे वृत्तं चतुरङ्कं त्रिसंधिमत् ॥ ७२ ॥

नरदिव्यावनियमान्नायकप्रतिनायकौ ।

ख्यातौ धीरोद्धतावन्त्यो विर्यासादयुक्तकृत् ॥ ७३ ॥

दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीयपहारादिनेच्छतः ।

शुङ्गाराभासमप्यस्य किञ्चित्किञ्चित्पदर्शयेत् ॥ ७४ ॥

संरम्भं परमानीय युद्धं व्याजान्निवारयेत् ।

वधप्राप्यस्य कुर्वीत वर्धं नैव महात्मनः ॥ ७५ ॥

सुगवदलभ्यां नायिकां नायकोऽस्मिन्नीहते इतीहास्यगः । स्यातास्यातं  
वस्त्वन्त्यः प्रतिनायको विष्ण्यासाद्विपर्ययज्ञानादयुक्तकारी विधेयः । स्प-  
ष्टमन्यत् ।

इत्थं विचिन्त्य दशरूपकलक्ष्मणाग-

मालोक्य वस्तु परिभाव्य कविप्रबन्धान् ।

कुर्यादयत्रवदलंकृतिभिः प्रवन्धं

वाक्यैरुदारमधुरैः स्फुटमन्दवृत्तैः ॥ ७६ ॥

स्पष्टम् ॥

इति श्रीविष्णुसूतोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोके  
रूपकलक्षणप्रकाशो नाम तृतीयः प्रकाशः समाप्तः ।

चतुर्थः प्रकाशः ।

९७

चतुर्थः प्रकाशः ।

अथेदानीं रसभेदः प्रदर्शयते—

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः ।

आनीयमानः स्वादत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥ १ ॥

वक्ष्यमाणस्वभावैर्विभावानुभावव्यभिचारिसात्त्विकैः काव्योपासौरभिनयोप-  
दर्शितैर्वा श्रोतृप्रेक्षकाणामन्तर्विर्विर्वत्मानो रत्यादिवैश्यमाणलक्षणः स्थायी  
स्वादगोचरतां निर्भानन्दसंविदात्मतामानीयमानो रसः । तेन रसिकाः सा-  
माजिकाः । काव्यं तु तथाविधानन्दसंविदुन्मीलनहेतुभावेन रसवदायुर्ध-  
तमित्यादिव्यपदेशवत् ।

तत्र विभावः—

ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत् ।

आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा ॥ २ ॥

एवमयमेवमित्यतिशयोक्तिरूपकाव्यव्यापाराहितविशिष्टरूपतया ज्ञा-  
यमानो विभाव्यमानः सन्नालम्बनत्वेनोद्दीपनत्वेन वा यो नायकादिरभिमत-  
देशकालादिर्वा स विभावः । यदुक्तं विभाव इति विज्ञातार्थ इति, तांश्च  
यथास्वं यथावसरं च रसेषूपपादयिष्यामः । अमीपां चानपेक्षितवाह्यसत्त्वानां  
शब्दोपधानादेवासादिततद्वावानां सामान्यात्मनां स्वस्यसंबन्धित्वेन विभावि-  
तानां साक्षाद्वावक्त्रेतसि विपरिवर्तमानानामालम्बनादिभाव इति न वस्तुशू-  
न्यता । तदुक्तं भर्तृहरिण—‘शब्दोपहितरूपांस्तान्वुद्देविषयतां गतान् ।  
प्रत्यक्षमिव कंसादीन्साधनत्वेन मन्यते ॥’ इति । पट्सहस्रीकृताप्युक्तम्—  
‘एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यन्ते’ इति ।

तत्रालम्बनविभावो यथा—

‘अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः

शृङ्खरैकनिधिः स्वयं तु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।

वेदाभ्यासनडः कथं तु विषयव्यावृत्तकौतूहलो

निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥’

१. ‘स्वादुत्वं’ इति पाठः. २. ‘आलम्बनोद्दीपनाभ्यां कान्तोद्यानादिना द्विधा’ इति पाठः.

उद्दीपनविभावो यथा—

‘अयमुदयति चन्द्रश्चन्द्रिकाभौनविशः  
परिणतविमलिङ्गं व्योम्नि कर्पूरगौरः ।  
ऋग्नुग्ननश्लाकाम्पर्मिर्यस्य पादे-  
नेगदमन्मणान्तिप्रवर्गां विभाति ॥’

अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः ।

स्थायिभावाननुभावयतः मामाजिकान्मनुभिभेगक्षाभादयो रसपोपकारिणोऽनुभावाः । एते चाभिनयकाव्ययोरप्यनुभावयतां माक्षाद्वावतः नुभवकर्मतयानुभूयन्त इत्यनुभवनमिति चानुभावा रसिकेषु व्यषटिश्यन्ते । विकारो भावसंसूचनात्मक इति तु लौकिकरसापेक्षया इह तु तेषां कारणत्वमेव । यथा मैमैव—

‘उज्जूम्भाननमुल्लमत्कुचतटं लोलध्रमद्धूलतं  
स्वादाम्भः स्वपिताङ्गयष्टिविगलद्वीडं सरोमाञ्चया ।

धन्यः कोऽपि युवा स यस्य वदने व्यापाग्निः समृद्धं  
मुखे दुर्घमहाभिष्फेनपश्चलप्रस्त्याः कटाक्षच्छयाः ॥’

इत्यादि यथारसमुदाहरिप्यामः ।

हेतुकार्यात्मनोः सिद्धिस्तयोः संव्यवहारतः ॥ ३ ॥

तयोर्विभावानुभावयोर्लौकिकरसं प्रतिहेतुकार्यभृतयोः संव्यवहारादेव सिद्धत्वात् पृथग्लक्षणमुपयुज्यते । तदुक्तम्—‘विभावानुभावौ लोकसंसिद्धौ लोकयात्रानुगामिनौ लोकस्य भावोपगतव्याज्ञ न पृथग्लक्षणमुच्यते’ इति ।

अथ भावः—

सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावस्तद्वावभावनम् ।

अनुकार्याश्रयत्वेनोपनिवध्यमानैः सुखदुःखादिरूपैर्भावैस्तद्वावस्य भावक्चेतसो भावनं वासनं भावः । तदुक्तम्—‘अहो ह्येन रसेन गन्धेन वा सर्वमेतद्वावितं वासितम्’ इति । यत्तु रसान्भावयन्भाव इति, कवेरन्तर्गतं भावं भावयन्भाव इति च, तदभिनयकाव्ययोः प्रवर्तमानस्य भावशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तकथनम् ।

ते च स्थायिनो व्यभिचारिणश्चेति वक्ष्यमाणाः ।

पृथग्भावा भवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्त्विकाः ॥ ४ ॥

सत्त्वादेव समुत्पत्तेस्तत्त्वं तद्भावभावनम् ।

परगतदुःखहर्षादिमावनायामत्यन्तानुकूलान्तःकरणत्वं सत्त्वम् । य-  
दाह—‘सत्त्वं नाम मनःप्रभवम् । तत्त्वं समाहितमनस्त्वादुत्पद्यते । एत-  
देवास्य सत्त्वं यतः स्त्रिज्ञेन प्रहर्षितेन चाश्रुरोमाश्चादयो निर्वर्त्यन्ते । तेन  
सत्त्वेन निर्वृत्ताः मात्तिगाम्न एव भावास्तत उत्पद्यमानत्वादश्रुप्रभृतयोऽपि  
भावा भावसंसूचनात्मकविकाररूपत्वाच्चानुभावा इति द्वैरूप्यमेषाम् ।

ते च—

स्तम्भप्रलयरोमाश्चाः स्वेदो वैवर्ण्यवेष्यु ॥ ५ ॥

अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टौ स्तम्भोऽस्मिन्निष्क्रियाङ्गता ।

प्रलयो नष्टसंज्ञत्वं शेषाः सुव्यक्तलक्षणाः ॥ ६ ॥

यथा—

‘वैवैङ्ग सेअदवदनी रोमश्चिभ गत्तिए ववइ ।

विलुप्तु तु वलभ लहु वाहोअल्हीए रणत्ति ॥

मुहउ सामलि होई खणे विमुच्छइ विअघेण ।

मुद्धा मुहअली तुअ पेम्मेण सावि ण घिजइ ॥’

अथ व्यभिचारिणः । तत्र सामान्यलक्षणम्—

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः ।

स्थायिन्युन्मयनिर्ममाः कलोला इव वारिधौ ॥ ७ ॥

यथा वारिधौ सत्येव कलोला उद्भवन्ति विलीयन्ते च तद्भद्रेव रस्यादौ  
स्थायिनि सत्येवाविर्भवतिरोभावाभ्यामाभिमुख्येन चरन्तो वर्तमाना निर्वेदा-  
दयो व्यभिचारिणो भावाः । ते च—

निर्वेदग्लानिशङ्काश्रमधृतिजडताहर्षदैन्यौद्यविन्ना-

स्त्रासेष्यार्थवर्गवर्गाः स्मृतिमरणमदाः सुमनिद्राविवोथाः ।

त्रीडापस्मारमोहाः समतिरलसतावेगतकावहित्या

व्याध्युन्मादौ विषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिंशदेते त्रयश्च ॥ ८ ॥

१. ‘वेपते खेदवदना रोमाश्च गत्रे वपति ।

विलोलस्ततो वलयो लघु आहुवल्लथां रणति ॥

मुखं श्यामलं भवति क्षणं विमूर्च्छति विदग्धेन ।

मुख्या मुखवली तव प्रेम्मा सापि न धैर्यं करोति ॥’ इति च्छाया.

तत्र निर्वेदः—

तत्त्वज्ञानापदीष्यदीर्निर्वेदः स्वावमाननम् ।  
तत्र चिन्ताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छासदीनताः ॥ ९ ॥

तत्त्वज्ञानानिर्वेदो यथा—

‘प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं  
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।  
संप्रीणिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं  
कल्पं स्थितं ततुभृतां ततुभिस्ततः किम् ॥’

आपदो यथा—

‘राजो विषद्वन्धुवियोगदुःखं देशच्युतिर्दुर्गममार्गवेदः ।  
आस्वाद्यतेऽस्थाः कटुनिष्फलायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः ॥’

ईर्ष्यातो यथा—

‘विश्विकशक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा  
स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनपरैः पीनैः किमेभिर्मुजैः ।  
न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ तापसः  
सोऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसभयाजीवत्यहो रावणः ॥’

वीरशृङ्गारयोर्यमिचारी निर्वेदो यथा—

‘ये बाहवो न युधि वैरिकठोरकण्ठ-  
पीठोच्छलद्विग्राजिविराजितांसाः ।

नापि प्रियापृथुपयोधरपत्रभङ्ग-  
संक्रान्तकुडुमरसाः खलु निष्फलास्ते ॥’

आत्मानुरूपं रिपुं रमणीं वालभमानस्य निर्वेदादियमुक्तिः । एवं रसा-  
न्तराणामप्यङ्गभाव उदाहार्यः ।

रसानङ्गः स्वतन्त्रो निर्वेदो यथा—

‘कस्त्वं भोः कथयामि दैवहतकं मां विद्धि शास्त्रोटकं  
वैराग्यादिव वक्षि साधु विदितं कस्माद्यतः श्रूयताम् ।  
वामेनात्र वटस्तमध्वगजनः सर्वात्मना सेवते  
न च्छायापि परोपकारकरणी मार्गस्थितस्यापि मे ॥’  
विभावानुभावरसाङ्गानङ्गभेदादनेकशास्त्रो निर्वेदो निर्दर्शनीयः ।

अथ ग्लानिः—

रत्याद्यायासतृद्भुद्धिर्गर्वनिर्निष्प्राणतेह च ।

वैवर्ण्यकम्पानुत्साहक्षामाङ्गवचनक्रियाः ॥ १० ॥

निघुवनकलाभ्यासादिश्रमतृद्भुद्भ्रमनादिभिर्निष्प्राणतारूपा ग्लानिः । अस्यां  
च वैवर्ण्यकम्पानुत्साहादयोऽनुभावाः ।

यथा मावे—

‘लुलितनयनताराः क्षामवक्त्रेन्दुबिम्बा

रजनय इव निद्राक्षान्तनीलोत्पलाक्ष्यः ।

तिमिरमिव दधानाः स्वंसिनः केशपाशा-

नवनिपतिगृहेभ्यो यान्त्यमूर्वारवध्वः ॥’

शेषं निर्वेदवदूष्यम् ।

अथ शङ्का—

अनर्थप्रतिभा शङ्का परक्रौर्यात्स्वदुर्नेयात् ।

कम्पशोषाभिवीक्षादिरत्र वर्णस्वरान्यता ॥ ११ ॥

तत्र परक्रौर्याद्यथा रत्नावल्याम्—

‘ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं

द्वयोर्द्वयालापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।

सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमविकं

प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ॥’

स्वदुर्नेयाद्यथा वीरचरिते—

‘दूराद्वीयो धरणीधराभं यस्ताटकेयं तृणवद्याधूनोत् ।

हन्ता सुबाहोरपि ताडकारिः स राजपुत्रो हृदि बाधते माम् ॥’

अनया दिशान्यदनुसर्तव्यम् ।

अथ श्रमः—

श्रमः स्वेदोऽधरत्यादेः स्वेदोऽस्मिन्मर्दनादयः ।

अध्वतो यथोत्तररामचरिते—

‘अलसलुलितमुग्धान्यध्वसंजातस्वेदा-

दशिथिलपरिम्बैर्दत्तसंवाहनानि ।

१. ‘शोका०’ इति पाठः.

परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि  
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवासा ॥'

रतिश्रमो यथा माघे—

‘प्राप्य मन्मथरसादतिभूमिं दुर्वहस्तनभराः सुरतस्य ।  
शश्रमुः श्रमजलाद्र्वललाटश्छिष्टकेशमसितायतकेश्यः ॥’

इत्याद्युत्प्रेक्ष्यम् ।

अथ धृतिः—

संतोषो ज्ञानशक्तयादेधृतिरव्यग्रभोगकृत ॥ १२ ॥

ज्ञानाद्यथा भर्तृहरिशतके—

‘वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या  
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।

स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला

मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः ॥’

शक्तितो यथा रक्षावल्याम्—

‘राज्यं निर्जितशत्रुं योग्यसच्चिवे न्यस्तः समस्तो भरः

सम्यक्षपालनपालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नामा धृतिः

कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ॥’

इत्याद्यूहम् ।

अथ जडता—

अप्रतिपत्तिर्जडता स्यादिष्टानिष्टदर्शनश्रुतिभिः ।

अनिमिषनयननिरीक्षणतूष्णिंभावादयस्तत्र ॥ १३ ॥

इष्टदर्शनाद्यथा—

‘एवमालि निगृहीतसाध्वसं शंकरो रहसि सेव्यतामिति ।

सा सखीभिरुपदिष्टमाकुला नास्मरत्प्रमुखवर्तिनि प्रिये ॥’

अनिष्टश्रवणाद्यथोदात्तराध्वे—‘राक्षसः—

तावन्तसे महात्मानो निहताः केन राक्षसाः ।

येषां नायकतां याताक्षिशिरःखरदूषणाः ॥

द्वितीयः—गृहीतघनुषा रामहतकेन । प्रथमः—किमेकाकिनैव ।  
द्वितीयः—अद्वृष्ट कः प्रत्येति । पश्य तावतोऽस्मद्गूलस्य ।

सद्यशिष्ठशिरःश्वभ्रमज्जत्कङ्कुलाकुलाः ।

कबृन्धाः केवलं जातास्तालोत्ताला रणाङ्गणे ॥

प्रथमः—सखे, यदेवं तदाहमेवंविषः किं करवाणि ॥ इति ।

अथ हृषिः—

प्रसत्तिरुत्सवादिभ्यो हर्षोऽश्रुस्वेदगृद्दाः ।

प्रियागमनपुत्रजननोत्सवादिविभावैश्चेतःप्रसादो हृषिः । तत्र चाश्रुस्वेद-  
गृद्दादयोऽनुभावाः । यथा—

‘आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुत्प्रेक्षय दुर्लङ्घचतां

गेहिन्या परितोषबाप्पकलिलामासज्य द्वाष्ट मुखे ।

दत्त्वा पीलुशमीकरीरकवलान्स्वेनाञ्छ्लेनादरा-

दुन्मृष्टं करभस्य केसरसटाभाराग्रलङ्घं रजः ॥’

निर्वद्वितिरुचेयम् ।

अथ दैन्यम्—

दौर्गत्यादैरनौजस्य दैन्यं काण्णर्मृजादिमत् ॥ १४ ॥

दारिद्र्यन्यकारादिविभावैरनौजस्कता चेतसो दैन्यम् । तत्र च कृष्ण-  
तामलिनवसनदर्शनादयोऽनुभावाः । यथा—

‘वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहं

कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो ।

यन्नात्सञ्चिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला

दृष्टा गर्भभरालसां सुतवधूं श्वशूश्चिरं रोदिति ॥’

शेषं पूर्ववत् ।

अथौद्यम्—

दुष्टेऽपराधदौर्मुख्यक्रौयैश्चण्डत्तमुग्रता ।

तत्र स्वेदशिरःकम्पतर्जनाताढनादयः ॥ १५ ॥

यथा वीरचरिते—‘जामदश्यः—  
 उत्कृत्योत्कृत्य गर्भानपि शकलयतः क्षत्रसंतानरोषा-  
     दुद्वामस्यैकविंशत्यवधि विशसतः सर्वतो राजवंश्यान् ।  
 पितृयं तदक्तपूर्णहृदसवनमहानन्दमन्दायमान-  
     क्रोधाङ्गे: कुर्वतो मे न खलु न विदितः सर्वभूतैः स्वभावः ॥’  
 अथ चिन्ता—  
 ध्यानं चिन्तेहितानासेः शून्यताश्वासतापकृत् ।

यथा—

‘पश्माग्रग्रथिताश्रुबिन्दुनिकरैर्मुक्ताफलस्पर्धिभिः  
     कुर्वन्त्या हरहासहारि हृदये हारावलीभूषणम् ।  
 बाले बालमृणालनालवलयालंकारकान्ते करे  
     विन्यस्याननमायताक्षि सुकृती कोऽयं त्वया स्मर्यते ॥’

यथा वा—

‘अस्तमितविग्रसङ्गा मुकुलितनयनोत्पला बहुधसिता ।  
 ध्यायति किमप्यलक्ष्यं बाला योगाभियुक्तेव ॥’

अथ त्रासः—

गर्जितादेर्मनःक्षोभस्वासोऽत्रोत्कम्पितादयः ॥ १६ ॥

यथा माघे—

‘त्रस्यन्ती चलशफरीविघट्टितोरु-  
     र्वमोरुरतिशयमाप विभ्रमस्य ।  
 क्षुम्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतो-  
     लींलाभिः किमु सति कारणे रमण्यः ॥’

अथासूया—

परोत्कर्षाक्षमासूया गर्वदौर्जन्यमन्युजा ।  
 दोषोत्त्यवग्ने भुकुटिमन्युक्रोधेङ्गितानि च ॥ १७ ॥

गर्वे यथा वीरचरिते—

‘अर्थित्वे प्रकटीकृतेऽपि न फलप्राप्तिः प्रभोः प्रत्युत  
     दुद्वान्दाशरथिर्विरुद्धचरितो युक्तस्या कन्यया

उत्कर्पं च परस्य मानयशसोविस्तंसनं चात्मनः  
खीरलं च जगत्पतिदेशमुखो द्वसः कथं मृष्यते ॥'

दौर्जन्याद्यथा—

'यदि परगुणा न क्षम्यन्ते यतस्य गुणार्जने  
नहि परयशो निन्दाव्याजैरलं परिमार्जितुम् ।  
विरमसि न चेदिच्छाद्वेषप्रसक्तमनोरथो  
दिनकरकरान्पाणिच्छैर्तुदञ्श्रममेष्यसि ॥'

मन्युजा अथामरुशनके—

'पुरस्तन्या गोत्रस्वलनचकितोऽहं नतमुखः  
प्रवृत्तो वैलङ्घ्यान्तिकमपि लिखितुं दैवहतकः ।  
स्फुटो रेखान्यासः कथमपि स तादृक्षरिणतो  
गता येन व्यक्ति पुनरवयवैः सैव तरुणी ॥  
ननश्चाभिज्ञाय स्फुरदरुणगण्डस्थलरुचा  
मनस्त्विन्या गेषप्रणग्गभमाद्गद्गिग ।  
अहो चित्रं चित्रं स्फुटमिति निगद्याश्चुकलुषं  
रुषा ब्रह्मास्त्रं मे शिरसि निहितो वामचरणः ॥'

अथामर्पः—

अधिक्षेपापमानादेरमर्पोऽभिनिविष्टा ।  
तत्र स्वेदशिरःकम्पतर्जनाताडनादयः ॥ १८ ॥

यथा वीरचरिते—

'प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात् ।  
न त्वेवं दृप्यिष्यामि शक्त्वग्रहमहाब्रतम् ॥'

यथा वा वेणीसंहरे—

'युपमच्छासनलङ्घनाभ्यसि मया मग्नेन नाम स्थितं  
प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतां मध्येऽनुजानामपि ।  
क्रोधोलासितशोणितारुणगदस्योच्छन्दतः कौरवा-  
नद्यैकं दिवसं ममासि न गुरुनाहं विधेयस्तव ॥'

अथ गर्वः—

गर्वोऽभिजनलावण्यबलैश्वर्यादिभिर्मदः ।  
कर्माण्याधर्षणावज्ञा सविलासाङ्गवीक्षणम् ॥ १९ ॥

यथा वीरचरिते—

‘मुनिरयमथ वीरस्तादृशस्तत्प्रियं मे  
विरमतु परिकम्पः कातरे क्षत्रियासि ।  
तपसि वितकर्तिर्दर्पकण्डूलदोष्णः  
परिचरणसमर्थो राघवः क्षत्रियोऽहम् ॥’

यथा वा तत्रैव—

‘ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये ।  
जामदश्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥’

अथ स्मृतिः—

सदशङ्कानचिन्ताद्यैः संस्कारात्समृतिरत्र च ।  
ज्ञातत्वेनार्थभासिन्यां भूसमुन्नयनादयः ॥ २० ॥

यथा—

‘मैनाकः किमयं रुणद्धि गगने मन्मार्गमव्याहतं  
शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्दीतो महेन्द्रादपि ।  
तार्श्यैः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावण-  
मा ज्ञातं स जटायुरेष जरसा हिंष्टो वथं वाञ्छति ॥’

यथा वा मालतीमाधवे—‘माधवः—मम हि प्राक्तनोपलम्भसंभावि-  
तात्मजन्मनः संस्कारस्यानवरतप्रबोधात्प्रतायमानस्तद्विसद्दैः प्रत्ययान्तरैर-  
तिरस्कृतप्रवाहः प्रियतमास्मृतिप्रत्ययोत्पत्तिसंतानस्तन्मयमिव करोति वृत्ति-  
सारूप्यतश्चैतन्यम् ।

‘लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च  
प्रत्युमेव च वज्रसारघटितेवान्तर्निखातेव च ।  
सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभि-  
श्चिन्तासंततितन्तुजालनिबिडस्यूतेव लग्ना प्रिया ॥’

अथ मरणम्—

मरणं सुप्रसिद्धत्वादनर्थत्वाच्च नोच्यते ।

यथा—

‘संप्राप्तेऽवधिवासरे क्षणमनु त्वद्वर्त्मवातायनं  
वारंवारमुपेत्य निष्क्रियतया निश्चित्य किंनिच्चिम् ।

संप्रत्येव निवेद्य केलिकुरर्णि साक्षं सखीम्यः शिशो-  
 र्मध्यन्याः सहकारकेण करुणः पाणिग्रहो निर्भितः ॥’  
 इत्यादिवच्छूद्धाराश्रयालम्बनत्वेन मरणे व्यवसायमात्रमुपनिवन्धनीयम् ।  
 अन्यत्र कामचारः । यथा वीरचरिते—‘पश्यन्तु भवन्तस्ताङ्काम् ।  
 ‘हन्मर्भेदिपतदुक्टकङ्कपत्र-  
 संवेगतत्क्षणकृतस्फुरदङ्गभङ्गा ।  
 नासाकुटीरकुहरद्वयतुल्यनिर्ण-  
 दुहुङ्कुदध्वनदमृतप्रसरा मृतैव ॥’

अथ मदः—

हर्षेत्कर्षे मदः पानात्स्वलदङ्गवचोगतिः ॥ २१ ॥  
 निद्रा हासोऽत्र रुदितं ज्येष्ठमध्याधमादिषु ।

यथा मात्रे—

‘हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृशि विकारविशेषाः ।  
 चक्रिरे भृशमृजोरपि वध्वाः कामिनेव तरुणेन मदेन ॥’

इत्यादि ।

अथ सुसम्—

सुमं निद्रोद्दर्शं तत्र श्वासोच्छ्वासक्रियापरम् ॥ २२ ॥

यथा—

• ‘लघुनि तृणकुटीरे क्षेत्रकोणे यवानां  
 नवकलमपल्लवस्तरे सोषधाने ।  
 परिहरति सुषुप्तं हालिकद्वन्द्वमारा-  
 त्कुचकलशमहोप्माबद्वरेखस्तुषारः ॥’

अथ निद्रा—

मनःसंपीलनं निद्रा चिन्तालस्यक्लमादिभिः ।  
 तत्र जृम्भाङ्गभङ्गाक्षिमीलनोत्स्वमतादयः ॥ २३ ॥

यथा—

‘निद्रार्धमीलितदशो मदमन्धराणि  
 नाप्यर्थवन्ति न च यानि निरर्थकानि ।

१. ‘उच्छ्वसनादयः’ इति पाठः.

अद्यापि मे मृगदशो मधुराणि तस्या-  
स्तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति ॥'

यथा च माघे—

‘प्रहरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोचैः  
प्रतिपदमुपहृतः केनचिज्जागृहीति ।

मुहुरविशदवर्णा निद्रया शून्यशून्यां  
दददपि गिरमन्तर्बुद्ध्यते नो मनुष्यः ॥’

अथ विबोधः—

विबोधः परिणामादेस्तत्र जृम्भाक्षिर्मदने ।

यथा माघे—

‘चिररतिपरिखेदप्राप्ननिद्रासुखानां  
चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रवृद्धाः ।  
अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणा-  
मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः ॥’

अथ व्रीडा—

दुराचारादिभिर्वीडा धार्ष्याभावस्तमुन्नयेत् ।

साचीकृताङ्गावरणवैवर्ण्यधीमुखादिभिः ॥ २४ ॥

यथामरुशतके—

‘पदालम्बे पत्यौ नमयति मुखं जातविनया  
हठाश्लेषं वाञ्छत्यपहरति गात्राणि निभृतम् ।

न शक्तोत्याख्यातुं स्मितमुखसखीदत्तनयना

ह्रिया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिहासे नववधूः ॥’

अथापमारः—

आवेशो ग्रहदुःखाचैरपस्मारो यथाविधिः ।

भूपातकम्पप्रस्वेदलालाफेनोद्भ्रादयः ॥ २५ ॥

यथा माघे—

‘आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चैर्लोलद्धु जाकारबृहत्तरङ्गम् ।

फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशशङ्के ॥’

अथ मौहः—

मोहो विचित्तता भीतिदुःखावेशानुचिन्तनैः ।  
तत्राज्ञानभ्रमाघातघूणिनादर्शनादयः ॥ २६ ॥

यथा कुमारसंभवे—

‘तीव्राभिषङ्गप्रभवेन वृत्ति मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम् ।  
अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव ॥’

यथा चोत्तररामचरिते—

‘विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा  
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।  
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो  
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च कुरुते ॥’

अथ मतिः—

भानिच्छेदोपदेशाभ्यां शास्त्रादेस्तत्त्वधीर्मतिः ।

यथा किराते—

‘सहसा विद्धीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।  
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥’

यथा च—

‘न पण्डिताः साहसिका भवन्ति श्रुत्वापि ते संतुलयन्ति तत्त्वम् ।  
तत्त्वं समादाय समाचरन्ति स्वार्थं प्रकुर्वन्ति परस्य चार्थम् ॥’

अथालस्यम्—

आलस्यं श्रमगर्भादेजहयजृम्भासितादिमत् ॥ २७ ॥

यथा मैव—

‘चलति कथंचित्पृष्ठा यच्छति वचनं कथंचिदालीनाम् ।  
आसितुमेव हि मनुते गुरुगर्भभरालसा सुतनुः ॥’

अथवेगः—

आवेगः संभ्रमोऽसिद्धिभिसरजनिते शस्त्रनांगाभियोगो  
वातात्पांसूपदिग्धस्त्वरितपदगतिर्बैषजे पिण्डिताङ्गः ।

उत्पातात्स्तस्तताङ्गेष्वहितहितकृते शोकहर्षानुभावा

वह्नेष्वमाङ्गुलास्यः करिजमनु भयस्तम्भकम्पापसाराः ॥ २८ ॥

१. ‘मायाभियोगी’ इति पाठः.

अभिसरो राजविद्रवादिः । तद्देतुरावेगः । यथा मैव—

‘आगच्छागच्छ सज्जं कुरु वरतुरगं संनिधेहि द्रुतं मे

खङ्गः कासौ कृष्णीमुपनय धनुषा किं किमङ्गप्रविष्टम्

संरभोन्निद्रितानां सितिभृति गहनेऽन्योन्यमेवं प्रतीच्छ-

न्वादः स्वामाभिद्वष्टे त्वयि चकितदशां विद्विषामाविरासीत् ॥’

इत्यादि ।

‘तनुत्राणं तनुत्राणं शस्त्रं शस्त्रं रथो रथः ।

इति शुश्रुविरे विष्वगुद्धयाः सुभटोक्तयः ॥’

यथा वा—

‘प्रारब्धां तरुपुत्रकेषु सहसा संत्यज्य सेकक्रिया-

मेतास्तापसकन्यकाः किमिदमित्यालोकयन्त्याकुलाः ।

आरोहन्त्युठद्गुमांश्च बट्टो वाचंयमा अप्यमी

सद्यो मुक्तसमाधयो निजवृषीष्वेवोच्चपादं स्थिताः ॥’

वातावेगो यथा—‘वाताहतं वसनमाकुलमुक्तरीयम्’ इत्यादि ।

वर्षजो यथा—

‘देवे वर्षत्यशनपवनव्याघृता वहिहेतो-

र्गेहद्वेहं फलकनिचितैः सेतुभिः पङ्कमीताः ।

नीत्रप्रान्तानविरलजलान्पाणिभिस्ताडयित्वा

शूर्पच्छत्रस्थगितशिरसो योषितः संचरन्ति ॥’

उत्पातजो यथा—

‘पौलस्त्यपीनभुजसंपदुदस्यमान-

कैलाससंभ्रमविलोलदशः प्रियायाः ।

श्रेयांसि वो दिशतु निष्टुनकोपचिह्न-

मालिङ्गनोत्पुलकमासितमिन्दुमौलिः ॥’

अहितकृतस्त्वनिष्टदर्शनश्रवणाभ्याम् । तद्यथोदात्तराघवे—‘चित्र-  
मायः—(ससंत्रमम् ।) भगवन् कुलपते रामभद्र, परित्रायतां परित्रायताम् ।  
(इत्याकुलतां नाटयति ।)’ इत्यादि । पुनः ‘चित्रमायः—

मृगरूपं परित्यज्य विधाय विकटं वपुः ।

नीयते रक्षसानेन लक्ष्मणो युधि संशयम् ॥

रामः—

वत्सस्याभयवारिधेः प्रतिभयं मन्ये कथं राक्षसा-  
त्रस्तश्चैष मुनिर्विरैति मनसश्चास्त्वेव मे संभ्रमः ।  
माहामीर्नेनकाम्बजामिति मुहुः लोहाद्वारुर्याचते  
न स्थातुं न च गन्तुमाकुलमतेर्मूढस्य मे निश्चयः ॥'

इत्यन्तेनानिष्टप्राप्तिकृतसंभ्रमः ।

इष्टप्राप्तिकृतो यथात्रैव—‘प्रविश्य पदाक्षेपेण संब्रान्तो वानरः ।’ वानरः—  
महाराज, एदं खु पवणणन्दणागमणेण पहरिस्—’ इत्यादि ‘देवस्स हि अआ-  
णन्दजणणं विअलिदं महुणम् ।’ इत्यन्तम् ।

यथा वा वीरचरिते—

‘एहेहि वत्स रघुनन्दन पूर्णचन्द्र  
चुम्बामि मूर्धनि चिरस्य परिष्वजे त्वाम् ।  
आरोप्य वा हृदि दिवानिशमुद्घामि  
वन्देऽथवा चरणपुष्करकद्रयं ते ॥’

वहिजो यथामरुशतके—

‘क्षिसो हस्तावलग्नः प्रसभमभिहतोऽप्याददानोऽशुकान्तं  
गृह्णकेशोष्पात्सश्चरणनिपतितो नेक्षितः संभ्रमेण ।  
आलिङ्गन्योऽवधूतश्चिपुरयुवतिभिः साथुनेत्रोत्पलाभिः  
कामीवार्द्धपराधः स दहतु दुरितं शांभवो वः शराम्भिः ॥’

यथा वा रघावल्याम्—

‘विरम विरम वहे मुञ्च धूमाकुलत्वं  
प्रसरयसि किमुचैरनिषां चक्रवालम् ।  
विरहद्वन्मुजाहं यो न दग्धः प्रियायाः  
प्रलयदहनभासा तस्य किं त्वं करोषि ॥’

करिजो यथा रघुवंशो—

‘स चिछन्नबन्धद्वृतयुग्मशूल्यं भग्नाक्षपर्यस्तरथं क्षणेन ।  
रामापरित्राणविहस्तयोर्धं सेनानिवेशं तुमुलं चकार ॥’

१. ‘महाराज, एतत्वलु पवननन्दणागमनेन प्रहर्ष—’ इति च्छाया. २. ‘देवस्स  
हृदयानन्दजननं विदलितं मधुवनम्’ इति च्छाया.

करिग्रहणं व्यालोपलक्षणार्थम् । तेन व्याप्रशूकरवानरादिप्रभवा आवेगा  
व्यास्थाताः ।

अथ वितर्कः—

तर्को विचारः संदेहाद्भूशिरोऽङ्गुलिनर्तकः ।

यथा—

‘किं लोभेन विलघ्बितः स भरतो येनैतदेवं कृतं  
संद्याः स्त्रीलघुतां गता किमथवा मातैव मे मध्यमा ।  
मिथ्यैतन्मम चिन्तितं द्वितयमप्यार्यानुजोऽसौ गुरु-  
र्माता तातकलत्रमित्यनुचितं मन्ये विधात्रा कृतम् ॥’

अथवा ।

‘कः समुचिताभिषेकादार्यं प्रच्यावयेद्गुणज्येष्ठम् ।  
मन्ये ममैष पुण्यैः सेवावसरः कृतो विधिना ॥’

अथावहित्यम्—

लज्जाद्यैर्विक्रियागुप्ताववहित्याङ्गविक्रिया ।

यथा दुमारसंभवे—

‘एवंवादिनि देवर्षैः पार्श्वे पितुरधोमुखी ।  
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥’

अथ व्याख्याः—

व्याधयः सन्निपाताद्यास्तेषामन्यत्र विस्तरः ॥ २९ ॥

दिद्बात्रं तु यथा—

‘अच्छिन्नं नयनाम्बु बन्धुषु कृतं चिन्ता गुरुम्योऽर्पिता  
दत्तं दैन्यमशेषतः परिजने तापः सखीप्वाहितः ।  
अद्य श्वः परिनिर्वृतिं व्रजति सा श्वासैः परं स्विद्यते  
विश्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया ॥’

अथोन्मादः—

अप्रेक्षाकारितोन्मादः सन्निपातग्रहादिभिः ।

अस्मिन्बवंस्था रुदितगीतहासासितादयः ॥ ३० ॥

यथा—‘आः क्षुद्रराक्षस, तिष्ठ तिष्ठ । क्ष मे प्रियतमामादाय गच्छसि’  
इत्युपक्रमे ‘कथम् ।

१. ‘स्थान०’ इति पाठः.

नवजलधरः सत्रद्वोऽयं न दृपनिशाचरः  
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम् ।  
अयमपि पद्मधीरासारो न बाणपरम्परा  
कनकनिकपञ्चिग्ना विद्युतिप्रिया न ममोर्वशी ॥'

इत्यादि ।

अथ विषादः—

प्रारब्धकार्यासिद्धादेविषादः सत्त्वसंक्षयः ।  
निःश्वासोच्छ्वासहृत्तापसहायान्वेषणादिकृत् ॥ ३१ ॥

यथा वीरचरिते—‘हा आर्ये ताडके, किं हि नामैतत् । अन्तुनि म-  
जन्त्यलावूनि, ग्रावाणः पुवन्ते ।

नन्वेष राक्षसपते: स्वलितः प्रतापः  
प्राप्तोऽद्भुतः परिभ्वो हि मनुष्यपोतात् ।  
दृष्टः स्थितेन च मया स्वजनप्रमाथो  
दैन्यं जरा च निरुणद्धि कर्थं करोमि ॥’

अथौत्सुक्यम्—

कालाक्षमत्वमौत्सुक्यं रम्येच्छारतिसंभ्रमैः ।  
तत्रोच्छ्वासत्वनिःश्वासहृत्तापस्वेदविभ्रमाः ॥ ३२ ॥

यथा कुमारसंभवे—

‘आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शविम्बे मनिमिनायनाक्षी ।  
हरोपयाने त्वरिता बभूव खीणां प्रियालोकफलो हि वेषः ॥’

यथा वा तत्रैव—

‘पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छ्रादनिनयद्विसुतासमागमोत्कः ।  
कमपरमवशं न विप्रकुर्युर्विभुमपि तं यदमी सृशन्ति भावाः ॥’

अथ चापला—

मात्सर्यद्वेषरागादेश्वापलं तनवस्थितिः ।  
तत्र भर्त्सनपारुष्यस्वच्छन्दाचरणादयः ॥ ३३ ॥

१. ‘त्वरा’ इति पाठः.

यथा विकटनितम्बायाः—

‘अन्यासु तावदुपमर्देसहासु भृङ्ग  
लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।  
बालामजातरजसं कलिकामकाले  
व्यर्थं कर्दर्थयसि किं नवमलिकायाः ॥’

यथा वा—

‘विनिकपणरणत्कठोरदंष्ट्राक्रकचविशङ्कुटकन्द्रोदराणि ।  
अहमहमिक्या पतन्तु कोपात्सममधुनैव किमत्र मनुखानि ॥’  
अथवा प्रस्तुतमेव तावत्सुविहितं करिष्ये ।’ इति ।

अन्ये च चित्तवृत्तिविशेषा एतेषामेव विभावानुभावस्वरूपानुप्रवेशान्न  
पृथग्वाच्याः ।

अथ स्थायी—

विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः ।

आत्मभावं नयत्यन्यान्स स्थायी लवणाकरः ॥ ३४ ॥

सजातीयविजातीयभावान्तरैरतिरस्कृतत्वेनोपनिबःयमानो रत्यादिः स्था-  
यी । यथा वृहत्कथायां नरवाहनदत्तस्य मदनमञ्जूषायामनुरागः । तत्तदवान्त-  
रानेकनायिकानुरागैरतिरस्कृतः स्थायी । यथा च मानवीमानो इमशानाङ्के  
बीभत्सेन मालत्युतुरागस्यातिरस्कारो मम हि प्राक्तनोपलम्भसंभावितात्मजन्म-  
नः संस्कारस्यानवरतप्रवोधात्प्रतीयमानस्तद्विसद्वैः प्रत्ययान्तरैरतिरस्कृतप्र-  
वाहः प्रियतमास्तृतिप्रत्ययोत्पत्तिसंतानस्तन्मयमिव करोत्यन्तर्वृत्तिसारुप्यत-  
श्चैतन्यमित्यादिनोपनिबद्धः । तदनेन प्रकारेण विरोधिनामविरोधिनां च स-  
मावेशो न विरोधी । तथाहि । विरोधः सहानवस्थानं बाध्यबाधकभावो वा ।  
उभयरूपेणापि न तावत्तादात्म्यमस्यैकरूपत्वेनैवाविर्भावात् । स्थायिनां च  
विभावादीनां यदि विरोधस्तत्रापि न तावत्सहानवस्थानं रत्याद्युपरक्ते चेतसि  
सक्षुत्रन्यायेनाविरोधिनां व्यभिचारिणां चोपनिबन्धः समस्तभावकस्वसंवेद-  
दनसिद्धः । यथैव स्वसंवेदनसिद्धस्तथैव काव्यव्यापारसंरम्भेणानुकार्येऽप्या-  
वेश्यमानः स्वचेतःसंभेदेन तथाविधानन्दसंविदुन्मीलनहेतुः संपद्यते । तस्मा-  
न्न तावद्वावानां सहानवस्थानम् । ॥ गणानामात्मुभावान्तरैर्भावान्तरति-  
रस्कारः । स च व्यभिचारिणां स्थायिनामविरुद्धव्यभिचारिभिः स्थायिनोऽवि-

रुद्धास्तेषामङ्गल्त्वात्प्रधानविरुद्धस्य चाङ्गल्त्वायोगाज्ञानन्तर्यविरोधित्वमप्यनेन  
प्रकारेणापास्तं भवति । तथा च मालतीमाधवे शृङ्गारानन्तरं बीभत्सोपनिब-  
न्धेऽपि न किंचिद्वैरस्य तदेवमेव स्थिते विरुद्धरसैकावलम्बनत्वमेव विरोधे  
हेतुः । सत्त्वविरुद्धरसान्तरब्यवधानेनोपनिबन्ध्यमानो न विरोधी । यथा—

‘अण्णहुणाहुमहेलिअहुजुहुपरिमलुसुसुअन्धु ।

मुहुकन्तह अगत्थणहअङ्गण फिड्ड गन्धु ॥’

इत्यत्र बीभत्सरसस्याङ्गभूतरसान्तरब्यवधानेन शृङ्गारसमावेशो न विरुद्धः  
प्रकारान्तरेणैकाश्रयविरोधी परिहर्तव्यः । ननु यत्रैकतात्पर्येणैतरेषां विरु-  
द्धानामविरुद्धानां च न्यग्भूतत्वेनोपादानं तत्र भवत्वङ्गल्त्वेनाविरोधः । यत्र  
तु समप्रधानत्वेनानेकस्य भावस्योपनिबन्धनं तत्र कथम् । यथा—

‘ऐकत्तो रुअङ्ग पिआ अण्णत्तो समरतूरणिग्नोसो ।

पेमेण रणरसेण अ भडस्स डोलाइअं हिअअम् ॥’

इत्यादौ रत्युत्साहयोः । यथा वा—

‘मातसर्यमुत्सार्य विचार्य कार्यमार्याः समर्यादमिदं वदन्तु ।

सेव्या नितम्बाः किमु भूवराणामुत समरस्मेरविलासिनीनाम् ॥’

इत्यादौ रतिशमयोः । यथा च—

‘इयं सा लोलाक्षी त्रिभुवनललामैकवसतिः

स चार्यं दुष्टात्मा स्वसुरपकृतं येन मम तत् ।

इतस्तीत्रः कामो गुरुरयमितः क्रोधदहनः

कृतो वेषश्चार्यं कथमिदमिति भ्राण्यति मनः ॥’

इत्यादौ तु रतिक्रोधयोः ।

‘अन्नैः कल्पितमङ्गलप्रतिसराः खीहस्तरक्तोत्पल-

व्यक्तोत्तंसभृतः पिनद्विशिरसा हृत्पुण्डरीकस्तजः ।

एताः शोणितपङ्ककुङ्कुमजुघः संभूय कान्तैः पिब-

न्त्यस्थित्वेहसुरां कपालचषकैः प्रीताः पिशाचाङ्गनाः ॥’

इत्यादवेकाश्रयत्वेन रतिजुगुप्तयोः ।

‘एकं ध्याननिमीलनान्मुकुलिं चक्षुद्वितीयं पुनः

पार्वत्या वदनाम्बुजस्तनतटे शृङ्गारभारलसम् ।

१. नितान्तास्फुटत्वादस्य श्लोकस्य व्याख्या न लिख्यतेऽस्माभिः.

२. ‘एकतो रोदिति प्रियान्यतः समरतूर्यनिर्वैषः ।

त्रेणा रणरसेन च भट्टस्य डोलायितं हृदयम् ॥’ इति च्छाया.

अन्यहूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोदीपितं  
शंभोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु वः ॥'

इत्यादौ शमरतिक्रोधानाम् ।

‘एकेनाक्षणा प्रविततरुषा वीक्षते व्योमसंस्थं  
भानोर्बिम्बं सजललुलितेनापेरणात्मकान्तम् ।

अहुश्चेदे दयितविरहाशङ्किनी चक्रवाकी  
द्वौ संकीर्णौ रचयति रसौ नर्तकीव प्रगल्भा ॥’

इत्यादौ रतिशोकक्रोधानां समप्राधान्येनोपनिबन्धस्तत्कथं न विरोधः ।  
अत्रोच्यते—अत्राप्येक एव स्थायी । तथाहि । ‘एकत्तो रुअइ पिआ’  
इत्यादौ स्थायिभूतोत्साहव्यभिचारिलक्षणवितर्कभावहेतुसंदेहम् । गणनया क-  
रुणसङ्घामतूर्ययोरुपादानं वीरमेव पुष्णातीति भट्सेत्यनेन पदेन प्रतिपादि-  
तम् । न च द्वयोः समप्रधानयोरन्योन्यमुपकार्योपकारकभावरहितयोरेक-  
वाक्यभावो युज्यते । किंचोपकान्ते सङ्घामे सुभयानां कार्यान्तरकरणेन प्र-  
स्तुतसङ्घामैदासीन्येन महदनैचित्यम् । अतो भर्तुः सङ्घामैकरसिकतया  
शौर्यमेव प्रकाशयन्त्रियतशकरुणो वीरमेव पुष्णाति । एवम् ‘मात्सर्यम्—’  
इत्यादावपि चिरप्रवृत्तरतिवासनाया हेयतयोपादानाच्छमैकपरत्वम् ‘आर्या:  
समर्यादम्’ इत्यनेन प्रकाशितम् । एवम् ‘इयं सा लोलाक्षी’ इत्यादावपि रा-  
वणस्य प्रतिपक्षनायकतया निशाचरत्वेन मायाप्रधानतया च रौद्रव्यभिचा-  
रिविषादविभाववितर्कहेतुतया रतिक्रोधयोरुपादानं रौद्रपरमेव । ‘अन्त्रैः क-  
लिपतमङ्गलप्रतिसरा’ इत्यादौ हास्यरसैकपरत्वमेव । ‘एकं ध्याननिमीन-  
नात्’ इत्यादौ शंभोर्भिवान्तरैरनाक्षिसतया शमस्थस्यापि योग्यन्तरशमाद्वैल-  
क्षण्यप्रतिपादनेन शमैकपरतैव ‘समाधिसमये’ इत्यनेन स्फुटीकृता । ‘एकेना-  
क्षणा’ इत्यादौ तु समस्तमपि वाक्यं भविष्यद्विप्रलभविषयमिति न क्वचि-  
दनेकतात्पर्यम् । यत्र तु क्षेषादिवाक्येष्वनेकतात्पर्यमपि तत्र वाक्यार्थभेदेन  
स्वतन्त्रतया चार्थद्वयपरतेत्यदेषः । यथा—

‘श्लाघ्याशेषतनुं सुदर्शनकरः सर्वाङ्गलीलाजित-  
ब्रैलोक्यां चरणारविन्दललितेनाक्रान्तलोको हरिः ।  
बिभ्राणां मुखमिन्दुसुन्दररुचं चन्द्रात्मचक्षुर्देष-  
त्स्थाने यां स्वतनोरपश्यदधिकां सा रुक्मिणी वोऽवतात् ॥’

इत्यादौ । तदेवमुक्तप्रकारेण रत्याद्युपनिबन्धे सर्वत्राविरोधः । यथा वा श्रूयमाणरत्यादिपदेष्वपि वाक्येषु तत्रैव तात्पर्यं तथाग्रे दर्शयिष्यामः ।

ते च—

रत्युत्साहजुगुप्ताः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः ।

शममपि केचित्प्राहुः उष्टुर्नाव्येषु नैतस्य ॥ ३५ ॥

इह शान्तरसं प्रति वादिनामनेकविधा विप्रतिपत्तयः । तत्र केनिदाहुः—  
नास्त्येव शान्तो रसः । तस्याचार्येण इभा गामप्रविगाद्नालुक्षणा इरणान् ।  
अन्ये तु वस्तुतस्तस्यामावं वर्णयन्ति । भनादिकालप्राहाग्नातरागद्वेषयो-  
रुच्छेत्तुमशक्यत्वात् । अन्ये तु वीरबीभत्सादावन्तर्भवं वर्णयन्ति । एवं  
वदन्तः शममपि नेच्छन्ति । यथा तथास्तु । सर्वथा नाटकादावभिनयात्मनि  
स्थायित्वमस्माभिः शमस्य निषिद्ध्यते । तस्य समस्तव्यापारप्रविलयरूपस्या-  
भिनयायोगात् । यत्तु कैश्चित्त्रागानन्दादौ शमस्य स्थायित्वमुपवर्णितम्, तत्तु  
मलयवल्लनुरागेणाप्रबन्धप्रवृत्तेन विद्याधरचक्रवर्तित्वप्राह्याविरुद्धम् । न ह्ये-  
कानुकर्यविभावालम्बनौ विषयानुरागापरागवुपलब्धौ । अतो दयावीरोत्साह-  
स्त्यैव तत्र स्थायित्वम् । तत्रैव शृङ्खारस्याङ्गत्वेन चक्रवर्तित्वावासेश्च फल-  
त्वेनाविरोधादीप्तिमेव च सर्वत्र कर्तव्यमिति परोपकारप्रवृत्तस्य विजिगी-  
षोर्नान्तरीयकल्पेन फलं संपद्यत इत्यावेदितमेव प्राक् । अतोऽष्टावेव स्था-  
यिनः । ननु च ‘रसनादसत्त्वमेतेषां मधुरादीनामिवोक्तमाचार्यैः । निर्वेदा-  
दिप्त्वपि तत्प्रकामस्तीति तेऽपि रसाः ॥’ इत्यादिना रसान्तराणामप्यन्तैरभ्यु-  
पगतत्वात्स्थायिनोऽप्यन्ये कल्पिता इत्यवधारणानुपत्तिः ।

अत्रोच्यते—

निर्वेदादिरताद्युप्यादस्थायी स्वदते कथम् ।

वैरस्यायैव तत्पोषस्तेनादौ स्थायिनो मताः ॥ ३६ ॥

विरुद्धाविरुद्धाविच्छेदित्वस्य निर्वेदादीनामभावादस्थायित्वम् । अत एव  
ते चिन्तादिस्वस्वव्यभिचार्यन्तरिता अपि परितोषं नीयमाना वैरस्यमावह-  
न्ति । न च निष्फलावसानत्वमेतेषामस्थायित्वनिबन्धनं हास्यादीनामप्य-  
स्थायित्वप्रसङ्गात् । पारम्पर्येण तु निर्वेदादीनामपि फलवत्त्वात् । अतो  
निष्फलत्वमस्थायित्वे प्रयोजकं न भवति । किंतु विरुद्धैरविरुद्धैर्भवैरतिर-  
स्कृतत्वम् । न च निर्वेदादीनामिति न ते स्थायिनः । ततो रसत्वमपि न तेषा-  
मुच्यते । अतोऽस्थायित्वादैतेषामरसता । क. पुनरेतेषां काव्येनापि संबन्धः ।

न तावद्वाच्यवाचकभावः स्वशब्दैरनवेदितत्वात् । न हि शृङ्गारादिरसेषु काव्येषु शृङ्गारादिशब्दा न्यादिशब्दा वा श्रूयन्ते । येन तेषां तत्परिपोषस्य वाभिधेयत्वं स्यात् । यत्रापि च श्रूयन्ते तत्रापि विभावादिद्वारकमेव रसत्वमेषां न स्वशब्दाभिधेयत्वमात्रेण । नापि लक्ष्यलक्षकभावस्तत्सामान्याभिधायिनस्तु लक्षकस्य पदस्याप्रयोगात् । नापि लक्षितलक्षण्या तत्प्रतिपत्तिः । यथा ‘गङ्गायां घोषः’ इत्यादौ । तत्र हि स्वार्थे न्योनोलक्षणे घोषस्यावस्थानासंभवात्स्वार्थे स्खलद्वृतिर्गङ्गाशब्दः स्वार्थे विना भूतार्थोपलक्षितं तटमुपलक्षयति । अत्र तु नायकादिशब्दाः स्वार्थेऽस्खलद्वृतयः रुग्मिणा निरग्मुपनागेयुः । को वा निमित्तप्रयोजनाभ्यां विना मुख्ये सत्युपचरितं प्रयुज्जीत । ‘सिंहो माणवकः’ इत्यादिवत् । अतएव गुणवृत्त्यापि नेयं प्रतीतिः । यदि वाच्यत्वेन रसप्रतिपत्तिः स्यात्तदा केवलवाच्यवाचकभावमात्रव्युत्पन्नतेत्सामप्यरसिकानां रसास्वादोद्भूतेः । अतः केचिदभिधालक्षणागौणीभ्यो वाच्यान्तरपरिकल्पितशक्तिभ्यो व्यञ्जकत्वलक्षणं शब्दव्यापारं रसालंकारवस्तुविषयमिच्छन्ति । तथाहि । विभावानुभावव्यभिचारिसुखेन रसादिप्रतिपत्तिरूपजायमाना कथमिव चाच्या स्यात् । यथा कुमारसंभवे—

‘विवृष्टती शैलमुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्वालकदम्बकलैः ।

साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥’

इत्यादावनुरागजन्यावस्थाविशेषानुभावद्विरजालक्षणविभावोपवर्णनादेवाशब्दापि शृङ्गारप्रतीतिरूदेति । रसान्तरेष्वप्ययमेव न्यायः । न केवलं रसेष्वेव यावद्वस्तुमात्रेऽपि । यथा—

‘भूम धर्मिअ वीसद्दो सो सुणहो अज्ज मारिओ तेण ।

गोलाणहकच्छकुड़वासिणा दरिअसीहेण ॥’

इत्यादौ निषेधप्रतिपत्तिरशब्दापि व्यञ्जकशक्तिमूलैव । तथालंकारेष्वपि—

‘लावण्यकान्तिपरिपूरितदिव्युखेऽस्मि-

न्मेरेऽधुना तव मुखे नग्लायतानि ।

क्षोभं यदेति न मनागपि तेन मन्ये

सुव्यक्तमेव जलराशिरयं पयोधिः ॥’

१. ‘भ्रम धार्मिक विश्रब्धः स श्वाद्य मारितस्तेन ।

गोदावरीनदीकच्छकुटङ्गवसिना दरीसिंहेन ॥’ इति च्छाया,

इत्यादिषु चन्द्रतुल्यं तन्वीवदनारविन्दमित्याद्युपमाद्यलंकारप्रतिपत्तिर्व्यञ्जक-  
त्वनिबन्धनीति । न चामावर्धीपत्तिजन्या । अनुपपद्यमानार्थीपेक्षाभावात् ।  
नापि वाक्यार्थत्वं व्यञ्जनस्य तृतीयकक्षाविषयत्वात् तथाहि—‘भ्रम धार्मिक’  
इत्यादौ पदार्थविषयाभिधालक्षणप्रथमकक्षातिक्रान्तक्रियाकारकसंसर्गात्मक-  
विधिविषयवाक्यार्थकक्षातिक्रान्ततृतीयकक्षाक्रान्तो निषेवात्मा व्यञ्जनल-  
क्षणोऽर्थे व्यञ्जकशक्त्यधीनः स्फुटमेवावभासते । अतो नासौ वाक्यार्थः ।  
ननु च तृतीयकक्षाविषयत्वमश्रूयमाणपदार्थतात्पर्येषु ‘विषं भुज्ञक्ष्व’ इत्यादि-  
वाक्येषु निषेधार्थविषयेषु प्रतीयत एव वाक्यार्थः । न चात्र व्यञ्जकत्ववादिनापि  
वाक्यार्थत्वं नेष्यते तात्पर्याद्यन्यत्वाद्युन्नेः । तत्र स्वार्थस्य द्वितीयकक्षायामवि-  
श्रान्तस्य तृतीयकक्षाभावात् । सैव निषेधकक्षा तत्र द्वितीयकक्षाविधौ क्रि-  
याकारकसंसर्गात्मनपत्तेः । प्रकरणात्पितरि वक्तरि पुत्रस्य विषभक्षणनियो-  
गाभावात् । रसवद्वाक्येषु च विभावप्रतिपत्तिलक्षणद्वितीयकक्षायां रसानव-  
गमात् । तदुक्तम्—

‘अप्रतिष्ठमविश्रान्तं स्वार्थं यत्परतामिदम् ।

वाक्यं विगाहते तत्र न्याय्या तत्परतास्य सा ॥

यत्र तु स्वार्थविश्रान्तं प्रतिष्ठां तावदागतम् ।

तत्प्रसर्पते तत्र स्यात्सर्वत्र ध्वनिना स्थितिः ॥’

इत्येवं सर्वत्र रसानां व्यञ्जनत्वमेव । वस्त्वलंकारयोस्तु क्वचिद्वाच्यत्वं  
क्वचिद्वाज्ञत्वम् । तत्रापि यत्र व्यञ्जनस्य प्राधान्येन प्रतिपत्तिस्तत्रैव  
ध्वनिः, अन्यत्र गुणीभूतव्यञ्जनत्वम् । तदुक्तम्—

‘यत्रार्थः शब्दो वा यमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थैः ।

व्यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥

प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गं तु रसादयः ।

काव्ये तस्मिन्नलंकारो रसादिरिति मे मतिः ॥’

यथा—‘उपोदरागेण’ इत्यादि । तस्य च ध्वनेविवक्षितवाच्याविवक्षि-  
तवाच्यत्वेन द्वैविध्यम् । अविवक्षितवाच्योऽप्यत्यन्ततिरस्कृतस्वार्थोऽर्थान्तरसं-  
क्रमितवाच्यश्चेति द्विधा । विवक्षितवाच्यश्च असंलक्षिकमः क्रमद्योत्यश्चेति  
द्विविधः । तत्र रसादीनामसंलक्ष्यक्रमे ध्वनित्वं प्राधान्यप्रतीतौ सत्यामङ्गत्वे-  
न प्रतीतौ रसवदलंकार इति ।

अत्रोच्यते—

वाच्या प्रकरणादिभ्यो बुद्धिस्था वा यथा किया ।

वाक्यार्थः कारकैर्युक्ता स्थायी भावस्तथेतरैः ॥ ३७ ॥

यथा लौकिकवाक्येषु श्रूयमाणक्रियेषु 'गामम्भ्याज-' इत्यादिष्वश्रूयमाण-  
क्रियेषु च 'द्वारं द्वारम्' इत्यादिषु स्वशब्दोपादानात्प्रकरणादिवशाहुद्घिसं-  
निवेशिनी क्रियैव कारकोपचिता वाक्यार्थस्तथा काव्येष्वपि स्वशब्दोपा-  
दानात्कचित् 'प्रीत्यै नवोदा प्रिया' इत्येवमादौ, क्वचिच्च प्रकरणादिवशान्नि-  
यताविहितविभावाद्यविनाभावाद्वा साक्षाद्वावकचेतसि विपरंवर्तमानो रत्यादिः  
स्थायी स्वस्विभावानुभावव्यभिचारिभिस्तत्तच्छब्दोपनीतैः संस्कारपरम्परया  
परं प्रौढिमानीयमानो रत्यादिवाक्यार्थः । न चापदार्थस्य वाक्यार्थत्वं नास्तीति  
वाच्यम् । कार्यपर्यवसायित्वात्तात्पर्यशक्तेः । तथाहि पौरुषेयमपौरुषेयं वाक्यं  
सर्वं कार्यपरम् । अतत्परत्वेऽनुपादेयत्वादुन्मत्तादिवाक्यवत्काव्यशब्दानां चा-  
न्वयव्यतिरेकाभ्यां निरतिशयसुखास्वादव्यतिरेकेण प्रतिपाद्यप्रतिपादकयोः प्र-  
वृत्तिविषययोः प्रयोजनान्तरानुपलब्धेः स्वानन्दोद्भूतिरेव कार्यत्वेनावधार्थेते ।  
तदुद्भूतिनिमित्तत्वं च विभावादिसंसृष्टस्य स्थायिन एवावगम्यते । अतो वाक्य-  
स्याभिधानशक्तिस्तेन तेन रसेनाकृप्यमाणा तत्त्वस्वार्थोक्षितावान्तरविभावा-  
दिप्रतिपादनद्वारा स्वर्पर्यवसायितामानीयते । तत्र विभावादयः पदार्थस्थानीया-  
स्तत्संसृष्टो रत्यादिर्वक्यार्थः । तदेतत्काव्यवाक्यम् । यदीयं ताविमौ पदा-  
र्थवाक्यार्थैः । न चैवं सति गीतादिवत्सुखजनकत्वेऽपि वाच्यवाचकभावानु-  
पयोगः । विशिष्टविभावादिसामग्रीविदुषमेव तथाविधरत्यादिभावनावतामेव  
स्वादोद्भूतेस्तदनेनातिप्रसङ्गोऽपि निरस्तः । ईदृशि च वाक्यार्थनिरूपणे परि-  
कल्पिताभिधादिशक्तिवशेनैव समस्तवाक्यार्थावगतेः शक्तयन्तरपरिकल्पनं  
प्रयासः । यथावोचाम काव्यनिर्णये—

'तात्पर्यानतिरेकाच्च व्यञ्जकत्वस्य न ध्वनिः ।

किमुक्तं स्यादश्रुतार्थतात्पर्येऽन्योक्तिरूपिणि ॥

विषं भक्षय पूर्वे यश्चैवं परसुतादिषु ।

प्रसद्यते प्रधानत्वाद्भूतित्वं केन वार्यते ॥

ध्वनिश्वेत्स्वार्थविश्रान्तं वाक्यमर्थान्तराश्रयम् ।

तत्परत्वं त्वविश्रान्तौ तत्र विश्रान्त्यमंभवात् ॥

एतावत्येव विश्रान्तिस्तात्पर्यस्येति किं कृतम् ।  
 यावत्कार्यप्रसारित्वात्तात्पर्य न तुलाधृतम् ॥  
 ऋग्म धार्मिकं विश्रब्धमिति ऋग्मकृतास्पदे ।  
 निर्व्यावृत्तिं कथं वाक्यं निषेधमुपसर्पति ॥  
 प्रतिपाद्यस्य विश्रान्तिरपेक्षापूरणाद्यदि ।  
 वकुर्विवक्षितप्रासेरविश्रान्तिर्न वा कथम् ॥  
 पौरुषेयस्य वाक्यस्य विवक्षा परतन्त्रता ।  
 वक्रभिप्रेततात्पर्यमतः काव्यस्य युज्यते ॥'

इति । अतो न रसादीनां काव्येन सह व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावः । किं तर्हि भाव्यभा-  
 वकसंबन्धः काव्यं हि भावकम् । भाव्या रसादयः । ते हि स्वतो भवन्त  
 एव भावकेषु विशिष्टविभावादिमता काव्येन भाव्यन्ते न चान्यत्र शब्दा-  
 न्तरेषु भाव्यभावकलक्षणसंबन्धभावात्काव्यशब्देष्वपि तथा भाव्यमिति वा-  
 च्यम् । भावनाक्रियावादिभिस्तथाङ्गीकृतत्वात् । किंच मा चान्यत्र तथा-  
 स्त्वन्वयव्यतिरेकाभ्यामिह तथावगमात् । तदुक्तम्—

‘भावाभिनयसंबन्धान्भावयन्ति रसानिमान् ।

यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाव्ययोक्तृभिः ॥’

इति । कथं पुनरगृहीतसंबन्धेभ्यः पदेभ्यः स्थाय्यादिप्रतिपत्तिरिति चेलोके  
 तथाविधिचेष्टायुक्तस्त्रीपुंसादिषु रत्याद्यविनाभावदर्शनादिहापि तथोपनिबन्धे  
 सति रत्याद्यविनाभूतचेष्टादिप्रतिपादकशब्दश्रवणादभिषेया विनाभावेन ला-  
 क्षणिकी रत्यादिप्रतीतिः । यथा च काव्यार्थस्य रसभावकत्वं तथाग्रे  
 वक्ष्यामः ।

रसः स एव स्वाद्यत्वाद्रसिकस्यैव वर्तनात् ।

नानुकार्यस्य वृत्तत्वात्काव्यस्यातत्परत्वतः ॥ ३८ ॥

द्रष्टुः प्रतीतिर्विडप्यरागद्वेषप्रसङ्गतः ।

लौकिकस्य स्वरमणीसंयुक्तस्यैव दर्शनात् ॥ ३९ ॥

काव्यार्थोपस्थावितो रसिकवर्तीं रत्यादिः स्थायीभावः स इति प्रतिनि-  
 दित्यते । स च स्वाद्यतां निर्भरानन्दसंविदात्मतामापाद्यमानो रसो रसिक-  
 वर्तीति वर्तमानत्वानानुकार्यरामादिवर्तीं वृत्तत्वात्तस्य । अथ शब्दोपहित-  
 रूपत्वेनावर्तमानस्यापि वर्तमानवद्वभासनमिष्यत एव । तथापि तदवभास-

स्यास्मदादिभिरनुभूयमानत्वादसत्समैकास्वादं प्रति विभावत्वेन तु रामादेवतीमानवद्वभासनमिष्यत एव । किंच न काव्यं रामादीनां रसोपजननाय कविभिः प्रवर्त्यते । अपि तु सहृदयानानन्दयितुम् । स च समस्तभावकस्वसंवेद्य एव । यदि चानुकार्यस्य रामादेः शृङ्गारः स्यात्तो नाटकादौ तद्दर्शने लौकिक इव नायके शृङ्गारिणि स्वकान्तासंयुक्ते दृश्यमाने शृङ्गारवानयमिति प्रेक्षकाणां प्रतीतिमात्रं भवेत्तरं रसानां स्वादः सत्पुरुषाणां च लज्जेतरेषां त्वसूयानुरागपहारेच्छादयः प्रसज्जेरन् । एवं च सति रसादीनां व्यङ्गच्यत्वमपास्तम् । अन्यतो लब्धसत्ताकं वस्त्वन्येनापि व्यज्यते । प्रदीपेनैव घटादि । न तु तदानीमैवाभिव्यञ्जकत्वाभिमैतरापाद्य स्वभावम् । भाव्यन्ते च विभावादिभिः प्रेक्षकेषु रसा इत्यावेदितमेव ।

ननु च सामाजिकाश्रयेषु रसेषु को विभावः । कथं च सीतादीनां च देवीनां विभावत्वेनाविरोध उच्यते ।

धीरोदात्ताद्यवस्थानां रामादिः प्रतिपादकः ।  
विभावयति रत्यादीन्स्वदन्ते रसिकस्य ते ॥ ४० ॥

न हि कवयो योगिन इव ध्यानचक्षुषा ध्यात्वा प्रतिस्विर्कं रामादीनामवस्थां इतिहासवदुपनिषद्भान्ति । किं तर्हि सर्वलोकसाधारणाः स्वोत्प्रेक्षाकृतसन्निधयो धीरोदात्ताद्यवस्थाः क्वचिदाश्रयमात्रदायिन्यो दधति ।

ता एव च परित्यक्तविशेषा रसहेतवः ।

तत्र सीतादिशब्दाः परित्यक्तजनकतनयादिविशेषाः स्त्रीमात्रवाच्चिनः क्रिमिवानिष्टं कुर्युः । किमर्थं तर्ह्युपादीयन्त इति चेदुच्यते—

क्रीडतां मृप्मर्यैर्यद्वद्वालानां द्विरदादिभिः ॥ ४१ ॥  
स्वोत्साहः स्वदते तद्वच्छोतुणामर्जुनादिभिः ।

एतदुक्तं भवति । नात्र लौकिकशृङ्गारादिवत्त्वयादिविभावादीनामुपयोगः । किं तर्हि प्रतिगादितप्रसागेण लौकिकरसविलक्षणत्वं नात्वरसानाम् । यदाह—‘अष्टौ नात्वरसाः स्मृताः’ इति ।

काव्यार्थभावनास्वादो नर्तकस्य न वार्यते ॥ ४२ ॥

नर्तकोऽपि न लौकिकरसेन रसवान्भवति । तदानीं भोग्यत्वेन स्वमहिलादेरग्रहणात्काव्यार्थभावनया त्यम्भदादिवरकाःयगमाम्यादोऽस्यापि न वार्यते ।

कथं च काव्यात्सादोद्भूतिः किमात्मा चासाविति व्युत्पादयते—

स्वादः काव्यार्थसंभेदादादात्मानन्दसमुद्भवः ।

विकाशविस्तरक्षोभविस्तैः स चतुर्विधः ॥ ४३ ॥

शृङ्गारवीरवीभत्सरौद्वेषु मनसः क्रमात् ।

हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि ॥ ४४ ॥

अतस्तज्जन्यता तेषामत एवावधारणम् ।

काव्यार्थेन विभावादि संसृष्टस्थाय्यात्मकेन भावकचेतसः संभेदेऽन्योन्य-  
संचलने प्रत्यस्तमितस्वपरविभागे सति प्रबलतरस्वानन्दोद्भूतिः स्वादः ।  
तस्य च सामान्यात्मकत्वेऽपि प्रतिनियतविभावादिकारणजन्यत्वेन संभेदेन  
चतुर्धा चित्तभूमयो भवन्ति । तद्यथा—शृङ्गारे विकासः, वीरे विस्तरः,  
वीभत्से क्षोभः, रौद्रे विक्षेप इति । तदन्येषां चतुर्णा हास्याद्भुतभयानक-  
रुणानां स्वसामग्रीलब्धपरिपोषणां त एव चत्वारो विकासाद्याश्वेतसः सं-  
भेदाः । अत एव—

‘शृङ्गाराद्वि भवेद्वास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।

वीराचैवाद्भुतोत्पत्तिर्भवित्साच्च भयानकः ॥’

इति । हेतुहेतुमद्भाव एव संभेदोपेक्षया दर्शितो न कार्यकारणभावाभिप्रायेण  
तेषां कारणान्तरजन्यत्वात् ।

‘शृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्य इति कीर्तिः ।’

इत्यादिना विकासादिसंभेदैकत्वस्यैव स्फुटीकरणादवधारणमप्यत एवाष्टाविनि  
संभेदानां भावात् । ननु च युक्तं शृङ्गारवीरहास्यादिपु ग्रमोदात्मकेषु वा-  
क्यार्थसंभेदादादानन्दोद्भव इति । करुणादौ तु दुःखात्मकत्वे कथमिवासौ  
प्रादुष्यात् । तथाहि । तत्र करुणात्मकाव्यश्रवणादुःखाविर्भावोऽश्रुपाता-  
द्यश्च रसिकानामपि प्रादुर्भवन्ति । न चैतदानन्दात्मकत्वे सति युज्यते ।  
सत्यमेतत् । किंतु तादृश एवासावानन्दः सुखदुःखात्मको यथा प्रहरणादिपु  
संभौगावस्थायां कुट्टमिते खीणामन्यश्च लौकिकात्करुणात्करुणः । त-  
थाह्यत्रोत्तरोत्तरा रसिकानां प्रवृत्तयः । यदि वा लौकिककरुणवद्वात्म-  
कत्वमेवेह स्यात्तदा न कश्चित्तत्र प्रवर्तेत । ततः कारुण्यैकरसानां रामाय-  
णादिमहाप्रबन्धानामुच्छेद एव भवेदश्रुपातादयश्चेति वृत्तवर्णनाकर्णनेन वि-  
निपातितेषु लौकिकवैकल्प्यदर्शनादिवत्प्रेक्षकाणां प्रादुर्भवन्तो न विरुद्ध्यन्ते ।  
तस्माद्रसान्तरवत्करुणस्याप्यानन्दात्मकत्वमेव ।

ननु शान्तरसस्यानभिधेयत्वाद्यद्यपि नाव्येऽनुप्रवेशो नास्ति तथापि  
सूक्ष्मातीतादिवस्तूनां सर्वेषामपि शब्दप्रतिपाद्यताया विद्यमानत्वात्काव्यवि-  
षयत्वं न निवार्यते । अतस्तदुच्यते—

शमप्रकर्षो निर्वाच्यो मुदितादेस्तदात्मता ॥ ४५ ॥

शान्तो हि यदि तावत्

‘न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा ।

रसस्तु शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शमप्रधानः ॥’

इत्येवंलक्षणः, तदा तस्य मोक्षावस्थायामेवात्मस्वरूपापत्तिलक्षणायां प्रादुर्भा-  
वात्तस्य च स्वरूपेणानिर्वचनीयता । तथाहि श्रुतिरपि स एष नेति नेत्य-  
न्यापोहरूपेणाह न च तथाभूतस्य शान्तरसस्य सहृदयाः स्वादयितारः स-  
न्त्यथ तदुपायभूतो मुदितामैत्रीकरुणोपेक्षादिलक्षणस्तस्य च विकाशवि-  
स्तारक्षोभविक्षेपरूपतैवेति । तदुत्तर्यैव शान्तरसास्वादो निरूपितः ।

इदानीं विभावादिविषयावान्तरकाव्यव्यापारप्रदर्शनपूर्वकः प्रकरणेनोप-  
संहारः प्रतिपाद्यते—

पदार्थैरन्दुनिर्वेदरोमाञ्चादिस्वरूपकैः ।

काव्याद्विभावसंचार्यनुभावप्रख्यतां गतैः ॥ ४६ ॥

भावितः स्वदते स्थायी रसः स परिकीर्तिः ।

अतिशयोक्तिरूपकाव्यव्यापाराहितविशेषैश्चन्द्राद्यरुद्धीपनविभावैः प्रमदा-  
प्रभृतिभिरालम्बनविभावैर्वेदादिभिर्व्यभिचारिभावैरोमाञ्चाश्रुभूक्षेपकटाक्षाद्यै-  
रनुभावैरवान्तरव्यापारतया पदार्थैभूतैर्वाक्यार्थः स्थायीभावो विभावितो  
भावरूपतामानीतः स्वदते स रस इति प्राक्प्रकरणे तात्पर्यम् ।

विशेषलक्षणान्युच्यन्ते—तत्राचार्येण स्थायिनां रत्यादीनां शृङ्गारादीनां  
च गृथलक्षणानि विभावादिप्रतिपादनेनोदितानि । अत्र तु—

लक्षणैक्यं विभावैक्यादभेदाद्रसभावयोः ॥ ४७ ॥

क्रियत इति वाक्यशेषः ।

तत्र तावच्छृङ्गारः—

रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः ।

प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः ।

प्रहृष्यमाणा शृङ्गारो मधुराङ्गविचेष्टितैः ॥ ४८ ॥

इत्थमुपनिबध्यमानं काव्यं शृङ्गाराख्यादाय प्रभवतीति । कव्युपदेशपरमेतत् ।

तत्र देशविभावो यथोत्तरसामचरिते—

‘स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन  
प्रतिविहितसपर्यामुस्थयोस्तान्यहानि ।

स्मरसि सरसतीरां तत्र गोदावरीं वा  
स्मरसि च तदुपानेष्वावयोर्वर्तनानि ॥’

कलाविभावो यथा—

‘हस्तैरन्तर्निहितवचैः सूचितः सम्यगर्थः  
पादन्यासैर्लेयमुपगतस्तन्मयत्वं रसेषु ।  
शाखायोनिर्घुटुभिनयः षड्डुकल्पोऽनुवृत्तै-  
र्भवे भावे नुदति विषयानरागबन्धः स एव ॥’

यथा च—

‘व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धामुना  
विस्पष्टो द्रुतमध्यलभितपरिच्छन्निधायं लयः ।  
गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण गतयस्तिस्वोऽपि संपादिता-  
स्तत्त्वौधानुगताश्च वादविधयः सम्यक्त्रयो दर्शिताः ॥’

कालविभावो यथा कुमारसंभवे—

‘असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि ।  
पादेन चापैक्षत सुन्दरीणां संपर्कमासिज्जितनूपेरण ॥’

इत्युपक्रमे—

‘मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां खामनुवर्तमानः ।  
शृङ्गेण संसर्शनिमीलिताशीं मृगीमकण्ठयत कृष्णसारः ॥’

वेषविभावो यथा तत्रैव—

‘अशोकनिर्भीत्सतपद्माग्रागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारम् ।  
मुक्ताकलापीकृतसिन्दुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ति ॥’

उपभोगविभावो यथा—

‘चक्षुर्लुप्तमषीकणं कवलितस्ताम्बूलरागोऽधरे  
विश्रान्ता कबरी कपोलफलके लुसेव गात्रयुतिः ।

जाने संप्रति मानिनि प्रणयिना कैरप्युपायक्रमै-  
भगो मानमहातस्तरुणि ते चेतःस्थलीवर्धितः ॥'

प्रमोदात्मा रतिर्था मालतीमाधवे—

‘जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः  
प्रकृतिमधुराः सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये ।

मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका  
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ॥’

युवतिविभावो यथा मालविकाशिमित्रे—

‘दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्ति वदनं बाहू नतावंसयोः  
संक्षिप्तं निबिडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रसृष्टे इव ।  
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जवनं पादावरालाङ्गुली  
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसः स्पष्टं तथास्या वपुः ॥

यूनोर्विभावो यथा मालतीमाधवे—

‘भूयो भूयः सविधनगरीरथ्यया पर्यटनं  
दृष्ट्वा दृष्ट्वा भवनवलभीतुङ्गवातायनस्था ।  
माःगः गामं नवमिव रतिमालती माधवं य-  
द्वादोल्कण्ठा लुलितलुलितैरङ्गैस्ताम्यतीति ॥’

अन्योन्यानुरागो यथा तत्रैव—

‘यान्त्या मुहुर्विलितकन्धरमाननं त-  
दावृत्तवृत्तशतपत्रनिभं वहन्त्या ।  
दिग्घोऽस्त्रेन च विषेण च पक्षमलाक्ष्या  
गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः ॥’

मधुराङ्गविचेष्टितं यथा तत्रैव—

‘स्तिमितविकसितानामुल्लसङ्गूलतानां  
मसृणमुकुलितानां प्रान्तविस्तारभाजाम् ।

प्रतिनयननिपाते किंचिदाकुञ्चितानां  
विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥’

ये सत्त्वजाः स्थायिन एव चाष्टौ

त्रिंशत्रयो ये व्यभिचारिणश्च ।

एकोनपञ्चाशदमी हि भावा  
युक्त्या निबद्धाः परिपोषयन्ति ।  
आलस्यमौर्यं मरणं जुगुप्सा  
तस्याश्रयाद्वैतविरुद्धमिष्टम् ॥ ४९ ॥

त्रयस्मिंशब्दचभिचारिणश्चाष्टौ स्थायिन अष्टौ सात्त्विकाश्रेत्येकोनपञ्चाशत् ।  
युक्त्याङ्गत्वेनोपनिबध्यमानाः शृङ्गारं संपादयन्त्यालस्यैश्चयजुगुप्सामरणादी-  
न्येकालम्बनविभावाश्रयत्वेन माक्षादङ्गत्वेन चोपनिबध्यमानानि विरुद्ध्यन्ते ।  
प्रकारान्तरेण चाविरोधः प्राप्तप्रिपान्ति एव ।

विभागस्तु—

अयोगो विप्रयोगश्च संभोगश्चेति स त्रिधा ।

अयोगविप्रयोगविशेषत्वाद्विप्रलम्भस्यैतत्सामान्याभिधायित्वेन विप्रलम्भ-  
शब्द उपचरितवृत्तिर्मा भूदिति न प्रयुक्तः । तथाहि । दत्त्वा संकेतम-  
प्राप्तेऽवध्यतिक्रमे साध्येन नायिकान्तरानुसरणाच्च विप्रलम्भशब्दस्य मुख्य-  
प्रयोगो वच्चनार्थत्वात् ।

तत्रायोगोऽनुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयोः ॥ ५० ॥

पारतन्त्रयेण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः ।

योगोऽन्यस्वीकारस्तदभावस्त्वयोगः । पारतन्त्रयेण विप्रकर्षादैवपि-  
त्राद्यायतत्वात्सागरिकामालयोर्वित्सराजमाधवाभ्यामिव दैवाद्वैरीशिवयोरि-  
वासमागमोऽयोगः ।

दशावस्थः स तत्रादावभिलाषोऽथ चिन्तनम् ॥ ५१ ॥

स्मृतिर्गुणकथोद्गेप्रलापोन्मादसंज्वराः ।

जडता मरणं चेति दुरवस्थं यथोत्तरम् ॥ ५२ ॥

अभिलाषः स्पृहा तत्र कान्ते सर्वाङ्गमुन्दरे ।

दृष्टे श्रुते वा तत्रापि विस्मयानन्दसाध्वसाः ॥ ५३ ॥

साक्षात्प्रतिकृतिस्वभच्छायामायामुदर्शनम् ।

श्रुतिर्व्याजात्सखीगीतमागधादिगुणस्तुतेः ॥ ५४ ॥

१. ‘काम्ये’ इति पाठः.

अभिलाषो यथा शाकुन्तले—

‘असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्थमस्यामभिलाषि मे मनः ।

सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥’

विस्मयो यथा—

‘स्तनावालोक्य तन्वज्ञच्चाः शिरः कम्पयते युवा ।

तयोरन्तरनिर्मशां दृष्टिमुत्पाटयन्निव ॥’

आनन्दो यथा विद्वशालभज्जिकायाम्—

‘सुधावद्भग्नासैरूपवनचकोरैः कवलितां

किरञ्ज्योत्स्नामच्छां लवलिफलपाकप्रणयिनीम् ।

उपग्राकाग्रं प्रहिणु नयने तर्कय मना-

गनाकाशो कोऽयं गलितहरिणः शीतकिरणः ॥’

साध्वसं यथा कुमारसंभवे—

‘तं वीक्ष्य वेष्युमती सरसाङ्गयष्टि-

निक्षेपणाय पदमुद्घातमुद्घहन्ती ।

मार्गाचलन्यतिकराकुलितेव सिन्धुः

शैलधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥’

यथा वा—

‘व्याहृता प्रतिवचो न संदेषे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।

सेवते स्म शयनं पराञ्चुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ॥’

सात्त्वुभावविभावास्तु चिन्ताद्याः पूर्वदर्शिताः ।

गुणकीर्तनं तु स्पष्टत्वान्न व्याख्यातम् ।

दशावस्थत्वमाचार्यैः प्रायो दृच्या निदर्शितम् ॥ ५५ ॥

महाकविमर्बन्धेषु दृश्यते तदनन्तता ।

दिव्यात्रं तु—

दृष्टे श्रुतेऽभिलाषाच्च किं नौत्सुक्यं प्रजायते ॥ ५६ ॥

अग्रासौ किं न निर्वेदो ग्लानिः किं नातिचिन्तनात् ।

शेषं प्रच्छन्नकामितादि कामसूत्रादवगन्तव्यम् ।

अथ विप्रयोगः—

विप्रयोगस्तु विश्लेषो रूढविसम्भयोद्दिधा ॥ ५७ ॥

१. ‘प्रयोगेषु’ इति पाठः.

मानप्रवासभेदेन मानोऽपि प्रणयेष्ययोः ।

प्राप्तयोरप्राप्तिर्विप्रयोगः । तस्य द्वौ भेदौ—मानः प्रवासश्च । मानविप्रयोगोऽपि द्विविधः—प्रणयमान ईर्ष्यमानश्चेति ।

तत्र प्रणयमानः स्यात्कोपावसितयोद्वयोः ॥ ५८ ॥

प्रेमपूर्वको वशीकारः प्रणयः । तद्भज्ञो मानः प्रणयमानः । स च द्वयोर्नायकयोर्भवति । तत्र नायकस्य यथोत्तररामचरिते—

‘अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः

सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूदोदावरीसैकते ।

आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया

कार्यादरविन्दकुड्लनिभो मुखः प्रणामाङ्गलिः ॥’

नायिकाया यथा श्रीवाक्षपतिराजदेवस्य—

‘प्रणयकुपितां दृष्ट्या देवीं ससंभ्रमविस्मित-

श्चिभुवनगुरुर्भीत्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत् ।

नमितशिरसो गङ्गालोके तथा चरणाहता-

ववतु भवतरुद्यक्षस्यैतद्विलक्षमवस्थितम् ॥’

उभयोः प्रणयमानो यथा—

‘पैणभकुविआण दोह्लवि अलिअपसुत्ताण माणइन्ताणम् ।

गिच्चलणिरुद्धणीसासदिणअणाण को मल्लो ॥’

स्त्रीणामीर्ष्याकृतो मानः कोपोऽन्यासङ्गिनि प्रिये ।

श्रुते वानुमिते दृष्टे श्रुतिस्तत्र सखीमुखात् ॥ ५९ ॥

उत्स्वमायितभोगाङ्गोत्रस्वलनकल्पितः ।

त्रिधानुमानिको दृष्टः सक्षादिन्द्रियगोचरः ॥ ६० ॥

ईर्ष्यमानः पुनः स्त्रीणमेव नायिकान्तरसङ्गिनि स्वकान्ते उपलब्धे<sup>१</sup> सत्य-न्यासङ्गः श्रुतो वानुमितो दृष्टो वा स्यात् । तत्र श्रवणं सखीवचनात्तस्या विश्वास्यत्वात् । यथा मैव—

‘सुभु त्वं नवनीतकल्पहृदया केनापि दुर्मन्त्रिणा

मिथ्यैव प्रियकारिणा मधुमुखेनास्मासु चण्डीकृता ।

१. ‘कोपावेशित’ इति पाठः.

२. ‘प्रणयकुपितयोद्वयोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मानवतोः ।

निश्चलनिरुद्धनिश्चासदत्तकर्णयोः को मलः ॥’ इति छाया.

किं त्वेतद्विमृश क्षणं प्रणयिनामेणाक्षि कस्ते हितः

किं धात्रीननगा वयं किमु सखी किं वा किमस्मत्सुहृत् ॥'

उत्स्वग्रायितो यथा रुद्रस्य—

‘निर्मम्बेन मयाम्भसि स्मरभरादाली समालिङ्गिता

केनालीकमिदं तवाद्य कथितं रावे मुधा ताम्भसि ।

इत्युत्स्वग्रपरम्परासु शयने श्रुत्वा वचः शाङ्किणः

सव्याजं शिथिलीकृतः कमलया कण्ठग्रहः पातु वः ॥’

भोगाङ्कानुमितो यथा—

‘नवनखपदभङ्गं गोपयस्यंशुकेन

स्थगयसि पुनरोषं पाणिना दन्तदष्टम् ।

प्रतिदिशमपरब्रीहसङ्गशंसी विसर्प-

नवपरिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥’

गोत्रस्वलनकल्पितो यथा—

‘केलीगोत्तकस्वलणे विकुप्पए केअवं अआणन्ती ।

दुष्टु उअनु परिहासं जाआ सच्च विअ परुणा ॥’

दृष्टो यथा श्रीमुञ्जस्य—

‘प्रणयकुपितां दृष्टा देवीं ससंभ्रमविस्मित-

लिमुवनगुरुर्भीत्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत् ।

नमितशिरसो गङ्गालोके तया चरणाहता-

ववतु भवतरुद्यक्षस्यैतद्विलक्षमवस्थितम् ॥’

एपाम्—

यथोत्तरं गुरुः पङ्गभिरुपायैस्तमुपाचरेत् ।

साम्ना भेदेन दानेन नत्युपेशारसान्तरैः ॥ ६१ ॥

तत्र प्रियवचः साम भेदस्तत्सख्युपार्जनम् ।

दानं व्याजेन भूषादेः पादयोः पतनं नतिः ॥ ६२ ॥

सामादौ तु परिक्षीणे स्यादुपेशावधीरणम् ।

रभसत्रासहर्षादेः कोपभ्रंशो रसान्तरम् ॥ ६३ ॥

कोपचेष्टाश्च नारीणां प्रागेव प्रतिपादिताः ।

१. ‘केलीगोत्रस्वलने विकुप्यति कैतवमजानन्ती ।

दुष्टु पद्य परिहासं जाआ सत्यमिव प्रहृदिता ॥’ इति च्छाया.

तत्र प्रियवचः साम यथा मैव—  
 ‘स्मितज्योत्स्नाभिस्ते ध्वलयति विश्वं मुखशशी  
 दृशस्ते पीयूषद्रवमिव विमुञ्चन्ति परितः ।  
 वपुस्ते लाक्षण्यं किरति मधुरं दिक्षु तदिदं  
 कुतस्ते पारुप्यं सुतनु हृदयेनाद्य गुणितम् ॥’

यथा वा—

इन्द्रीवरेण नयनं मुखमभ्युजेन कुन्देन दन्तमधरं नवपङ्कजेन ।  
 अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय वेधाः कान्ते कर्थं रचितवानुपलेन चेतः ॥’

नारिहान्मीमांसीनभेदो यथा मैव—

‘कृतेऽप्याज्ञाभङ्गे कथमिव मया ते प्रणतयो  
 धृताः स्मित्वा हस्ते विमृजन्मि रूपं सुभ्रु बहुशः ।  
 प्रकोपः कोऽप्यन्यः पुनरयमसीमाद्य गुणितो  
 वृथा यत्र स्त्रिघाः प्रियमहन्त्रीणामपि गिरः ॥

दानं व्याजेन भूषोदर्थया मावे—

‘मुहुरुपहसिताभिवालिनादै-  
 वितरसि नः कलिकां किमर्थमेनाम् ।

अधिरजनि गतेन धान्नि तस्याः

शठ कलिरेव महास्त्वयाद्य दत्तः ॥’

पादयोः पतनं नतिर्यथा—

‘ण्ठुरकोडिविलगं चिहुरं दइअस्म पाअपडिअस्म ।  
 हि अर्थं माणपउत्थं उम्मोर्थं त्ति च्छिअ कहेइ ॥’

उपेक्षा तद्वधीरणं यथा—

‘किं गतेन न हि युक्तमुपैतु नेश्वरे परुषता सस्ति साध्वी ।  
 आनयैनमनुनीय कर्थं वा विप्रियाणि जनयन्ननुनेयः ॥’

रभसत्रासहपादे रसान्तरात्कोपत्रंशो यथा मैव—

‘अभिव्यक्तालीकः सकलविफलोपायविभव-  
 श्विरं ध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरम्भनिपुणम् ।

१. ‘नूपुरकोटिविलमं चिकुरं दयितस्य पादपतितस्य ।

हृदयं मानपदोत्यमुन्मुक्तमिलेव कथयति ॥’ इति च्छाया.

इतः पृष्ठे पृष्ठे किमिदमिति संत्रास्य सहसा  
कृताल्लेषां धूर्तः स्मितमधुरमालिङ्गति वधूम् ॥'

अथ प्रवासविप्रयोगः—

कार्यतः संभ्रमाच्छापात्प्रवासो भिन्नदेशता ॥ ६४ ॥

द्र्योस्तत्राश्रुनिःश्वासकाश्यर्थलम्बालकादिता ।

स च भावी भवनभूतविधाद्यो बुद्धिपूर्वकः ॥ ६५ ॥

आद्यः कार्यजः समुद्रगमनसेवादिकार्यवशप्रवृत्तौ बुद्धिपूर्वकत्वाद्भूतभवि-  
प्यद्वर्तमानतया त्रिविधः ।

तत्र यास्यत्प्रवासो यथा—

‘होन्तपहिअस्स जाआ आउच्छणजीअधारणरहस्सम् ।

पुच्छन्ती भमइ घरं घोसु पिअविरहसहिरीआ ॥’

गच्छत्प्रवासो यथामरुशतके—

‘प्रहरविरतौ मध्ये वाहस्तोऽपि परेऽथवा

दिनकृति गते वास्तं नाथ त्वमद्य समेष्यसि ।

इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य यियासतो

हरति गमनं बालालापैः सबाप्पगलज्जलैः ॥’

यथा वा तत्रैव—

‘देशैरन्तरिता शतैश्च सरितामुर्वीभृतां काननै-

र्यनेनपि न याति लोचनपथं कान्तेति जानन्नपि ।

उद्धीवश्वरणार्धरुद्धवसुधः कृत्वाश्रुपूर्णे दृशौ

तामाशां पथिकस्तथापि किमपि ध्यात्वा चिरं तिष्ठति ॥’

गतप्रवासो यथा मेघदूते—

‘उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां

मद्दोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।

तन्त्रीमाद्रीं नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचि-

द्धूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥’

१. ‘भविष्यत्पथिकस्य जाया आयुःक्षणजीवधारणरहस्यम् ।

पृच्छन्ती भ्रमति गृंहाद्वृहेषु प्रियविरहसहीका ॥’ इति च्छाया.

आगच्छदागतयोस्तु प्रवासाभावादेष्यत्प्रवासस्य च गतप्रवासाविशेषा-  
वैविष्यमेव युक्तम् ।

**द्वितीयः सहसोत्पन्नो दिव्यमानुषविष्णुवात् ।**

उत्पातनिर्वातवातादिजन्यविष्णुवात्परचक्रादिजन्यविष्णुवाद्वातुद्विपूर्वकत्वा-  
देकरूप एव संभ्रमजः प्रवासः । यथोर्वशीपुरुषसोर्विकमोर्वश्याम् । यथा  
च कपालकुण्डलापहतायां मालत्यां मालतीमाधवयोः ।

**स्वरूपान्यत्वकरणाच्छापजः सञ्चिधावपि ॥ ६६ ॥**

यथा कादम्बर्या वैशंपायनस्येति ।

मृते त्वेकत्र यत्रान्यः प्रलपेच्छोक एव सः ।

द्युयाश्रयत्वात् शृङ्गारः प्रत्यापन्ने तु नेतरः ॥ ६७ ॥

यथेन्दुमतीमरणादजस्य करुण एव रघुवंशे । कादम्बर्या तु प्रथमं क-  
रुण आकाशसरस्वतीवचनादूर्ध्वं प्रवासशृङ्गार एवेति ।

तत्र नायिकां प्रति नियमः—

**प्रणयायोगयोरुत्का प्रवासे प्रोषितप्रिया ।**

**कलहान्तरितेष्यायां विप्रलब्धा च खण्डिता ॥ ६८ ॥**

अथ संभोगः—

अनुकूलौ निषेवते यत्रान्योन्यं विलासिनौ ।

दर्शनस्पर्शनादीनि स संभोगो मुदान्वितः ॥ ६९ ॥

यथोत्तररामचरिते—

‘किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-

दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।

सपुलकपरिरम्भव्यायृतैकैकदोषो-

रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥’

अथवा । ‘प्रिये, किमेतत् ।

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।

१. ‘निराश्रयात्’ इति पाठः.

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो  
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च कुरुते ॥'

यथा च मैव—

‘लावण्यामृतवर्षिणि प्रतिदिशं कृष्णागरुद्यामले  
वर्षीणामिव ते पयोधरभरे तन्वज्ञि दूरोन्नते ।  
नासावंशमनोज्ञकेतकतनुर्भूपत्रगर्भेह्लस-  
त्पुष्पश्रीस्तिलकः सहेलमलैर्भृज्जरिवापीयते ॥’  
चेष्टास्तत्र प्रवर्तन्ते लीलाद्या दश योपिताम् ।  
दाक्षिण्यमार्दवप्रेम्णामनुरूपाः प्रियं प्रति ॥ ७० ॥  
ताश्च सोदाहतयो नायकप्रकाशो दर्शिताः ।

रमयेच्चादुकृत्कान्तः कलाक्रीडादिभिश्च ताम् ।

न ग्राम्यमाचरेत्किंचिन्नर्मध्रंशकरं न च ॥ ७१ ॥

ग्राम्यः संभोगो रङ्गे निपिद्धोऽपि काव्येऽपि न कर्तव्य इति पुनर्निषि-  
ध्यते । यथा रत्नावल्याम्—

‘मृष्टस्त्वयैष दयिते स्मरपूजाव्याप्तेन हस्तेन ।  
उद्दिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोकः ॥’

इत्यादि । नायकनायिकाकैशिकीवृत्तिनाटकनाटिकालक्षणाद्युक्तं कविपरम्प-  
रावगतं स्वयमौचित्यसंभावनानुगुण्येनोत्प्रेषितं चानुसंदधानः सुकविः शृङ्गार-  
मुपनिवन्नीयात् ।

अथ वीरः—

वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्व-  
मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यैः ।

उत्साहभूः स च दयारणदानयोगा-

त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षाः ॥ ७२ ॥

प्रतापविनयादिभिर्विभावितः करुणायुद्धदानावैरनुभावितो गर्वधृतिहर्षा-  
मर्षस्मृतिमतिवितर्कप्रभृतिभिर्भावित उत्साहः स्थायी स्वदते भावकमनोवि-  
स्तारानन्दाय प्रभवतीत्येष वीरः । तत्र दयावीरो यथा नागानन्दे जीमूत-

वाहनस्य । युद्धवीरो वीरचरिते रामस्य । दानवीरः परशुरामबलिप्रभृतीनाम् ।  
‘त्यागः सप्तसमुद्रसुद्रितमहीनव्याजदानावधिः’ इति ।

‘खर्वग्रन्थिविमुक्तसंघि विकसद्रक्षः स्फुरत्कौस्तुभं  
निर्यत्वाभिसरोजकुञ्जलकुटीगम्भीरसामध्वनि ।  
पात्रावाप्तिसमुत्सुकेन बलिना सानन्दमालोकितं  
पायाद्वः क्रमवर्धमानमहिमाश्चर्यं मुरारेवंपुः ॥’

यथा च मैत्रै—

‘लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्गकुञ्जमारुणितो हरेः ।  
बलिरेष स येनास्य भिक्षापात्रीकृतः करः ॥’

विनयादिषु पूर्वमुदाहृतमनुसंधेयम् । प्रतापगुणावर्जनादिना वीराणामपि  
भावात्रैवं प्रायोवादः । प्रस्वेदरक्तवदननयनादिक्रोधानुभावरहितो युद्धवी-  
रोऽन्यथा रौद्रः ।

अथ वीभत्सः—

वीभत्सः कृमिपूतिगन्धिवमथुप्रायैर्जुगुप्सैकभू-  
स्ट्रेगी रुधिरान्त्रकीकसवसामांसादिभिः क्षोभणः ।  
वैराग्याज्ज्वनस्तनादिषु घृणाञ्चुदोऽनुभावैर्वृत्तो  
नासावक्रविकूणनादिभिरिहावेगार्तिशङ्कादयः ॥ ७३ ॥

अत्यन्ताहैः कृमिपूतिगन्धिप्रायविभावैरुद्धूतो जुगुप्सास्थायिभावपरि-  
पोषणलक्षण उद्देगी वीभत्सः । यथा मालतीमाधवे—

‘उत्कृत्योत्कृत्य कृत्ति प्रथममथ पृथूच्छोपभूयांसि मांसा-  
न्यंसस्फिक्षुष्टपिण्डाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ।  
आर्तः पर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्गः करङ्गा-  
दङ्गस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥’

रुधिरात्रवसाकीकसमांसादिविभावः क्षोभणो वीभत्सः ।

यथा वीरचरिते—

‘आत्रप्रोतब्रह्मत्कपालनलकूरकणत्कङ्गण-  
प्रायप्रेक्षितभूरिभूषणरौराघोषयन्त्यम्बरम् ।

१. ‘युक्तो’ इति पाठः.

पीतोच्छर्दितरक्तकर्दमधनग्रामभारवोरोल्लम-  
आलोलस्तनभारभैरववपुर्बन्धोद्धतं धावति ॥’  
रम्येष्वपि रमणीयजघनस्तनादिषु वैराग्याद्वृणाशुद्धो वीभत्सः । यथा—  
‘लालां वक्कासवं वेत्ति मांसपिण्डौ पयोधरौ ।  
मांसाम्नियूरुं जघनं जनः कामग्रहातुरः ॥’

न चायं शान्तं एव विरक्तो यतो वीभत्समानो विरज्यते ।  
अथ रौद्रः—

क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतमयैः पोषोऽस्य रौद्रोऽनुजः  
क्षोभः स्वाधरदंशकम्पभुकुटिस्वेदास्यरागैर्युतः ।  
शस्त्रोल्लासविकत्थनांसधरणीघातप्रतिज्ञाग्रहै-  
रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्वपलतासूर्यौश्यवेगादयः ॥ ७४ ।  
मात्सर्यविभावो रौद्रो यथा वीरचरिते—  
‘त्वं ब्रह्मवर्चसधरो यदि वर्तमानो  
यद्वा स्वजातिसमयेन धनुर्धरः स्याः ।  
उग्रेण भोस्त्व तपस्तपसा दहामि  
पक्षान्तरस्य सदृशं परशुः करोति ॥’

वैरिवैकृतादिर्यथा वेणीसंहारे—

‘लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः  
प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य ।  
आकृष्टपाण्डववधूपरिधानकेशाः  
स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्रः ॥’  
इत्येवमादिविभावैः प्रस्वेदरक्तवदननयनाद्यनुभावैरमर्षादिव्यभिचारिभिः क्रो-  
धपरिपोषो रौद्रः । परशुरामभीमसेनदुर्योधनादिव्यवहोरेषु वीरचरित-वेणी-  
संहारादेवनुगन्तव्यः ।

अथ हास्यः—

विकृताकृतिवाग्वैरात्मनोऽथ परस्य वा ।  
हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यत्रिप्रकृतिः स्मृतः ॥ ७५ ॥

भ्रांमन्नानिकृतवेषभाषादीन्परम्पान्वा विभावानवलम्बमानो हासस्त-  
त्परिपोषात्मा हास्यो रसो व्यधिष्ठानो भवति । स चोत्तममध्यमाधमप्रकृति-  
भेदात्पद्धिः ।

आत्मस्यो यथा रावणः—

‘जातं मे परुषेण भस्मरजसा तच्चन्दनोद्भूलनं  
हारो वक्षसि यज्ञसूत्रमुचितं क्लिष्टा जटाः कुन्तलाः ।  
रुद्राक्षैः सकलैः सरलवलयं चित्रांशुकं वल्कलं  
सीतालोचनहारि कल्पितमहो रम्यं वपुः कामिनः ॥’

परस्यो यथा—

‘भिक्षो मांसनिषेवणं प्रकुरुषे किं तेन मद्यं विना  
किं ते मद्यमपि प्रियं प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह ।  
वेश्या द्रव्यरुचिः कुतस्तव धनं घृतेन चौर्येण वा  
चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतो दासस्य कान्या गतिः ॥’

स्मितमिह विकासिनयनं किंचिल्लक्ष्यद्विजं तु हसितं स्यात् ।

मधुरस्वरं विहसितं सशिरः कम्पमिदमुपहसितम् ॥ ७६ ॥

अपहसितं सास्त्राकं विक्षिपाङ्गं भवत्यतिहसितम् ।

द्वे द्वे हसिते चैषां ज्येष्ठे मध्येऽध्यमे क्रमशः ॥ ७७ ॥

उत्तमस्य स्वपरस्यविकारदर्शनात्सितहसिते मध्यमस्य विहसितोपह-  
सितेऽध्यमस्यापहसितातिहसिते । उदाहृतयः स्वयमुत्प्रेक्ष्याः । व्यभिचारि-  
णश्चास्य—

निद्रालस्यश्रमग्लानिमूर्छाश्च सहचारिणः ।

अथाद्बृतः—

अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्यात्मा रसोऽद्भृतः ॥ ७८ ॥

कर्मास्य साधुवादादश्रुवेप्युखेदगद्वदाः ।

हर्षवेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः ॥ ७९ ॥

लोकसीमातिवृत्तपदार्थवर्णनादिविभावितः साधुवादाद्यनुभावपरिपुष्टो वि-  
स्मयः स्थायिभावो हर्षवेगादिभावितो रसोऽद्भृतः । यथा—

१. ‘बमथु’ इति पाठः.

‘दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्धत-  
ष्टङ्गारध्वनिरार्थबालचरितप्रस्तावनाडिण्डमः ।  
द्राक्षपर्यासकपालसंपुटमिलद्वजाण्डभाण्डोदर-  
भ्राम्यत्पिण्डतचण्डमा कथमसौ नाद्यापि विश्राम्यति ॥’

इत्यादि ।

अथ भयानकः—

विकृतस्वरसच्चादेभयभावो भयानकः ।

सर्वाङ्गवेपथुखेदशोष्वैचित्यलक्षणः ।

दैन्यसंभ्रमसंमोहत्रासादिस्तत्सहोदरः ॥ ८० ॥

रौद्रशब्दश्रवणाद्रौद्रसत्त्वदर्शनाच्च भयस्थायिभावप्रभवो भयानको रसः ।  
तत्र सर्वाङ्गवेपथुप्रभृतयोऽनुभावाः । दैन्यादयस्तु व्यभिचारिणः । भयानको  
यथा प्रागुदाहृतः—

‘शस्त्रोतसमुत्सुज्य कुञ्जीभूय शनैः शनैः ।

यथायथागतैनैव यदि शक्नोषि गम्यताम् ॥’

यथा च रत्नावल्याम्—‘नष्टं वर्षवरैः’ इत्यादि ।

यथा च—

‘स्वगेहात्पन्थानं तत उपचितं काननमथो

गिरि तस्मात्सान्द्रदुमगहनमस्मादपि गुहाम् ।

तदन्वज्ञान्यज्ञैरभिनिविशमानो न गणय-

ल्यरातिः क्लालीये तव विजययात्राचकितधीः ॥’

अथ करुणः—

इष्टनाशादनिष्ठासौ शोकात्मा करुणोऽनु तम् ।

निःश्वासोच्छ्वासरुदितस्तम्भप्रलिपितादयः ॥ ८१ ॥

स्वापापस्मारदैन्याधिमरणालस्यसंभ्रमाः ।

विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः ॥ ८२ ॥

इष्टस्य बन्धुप्रभृतेर्विनाशादनिष्टस्य तु बन्धनादेः प्राह्या शोकप्रकर्षजः

१. ‘वैवर्य’ इति पाठः. २. ‘आसेः’ इति पाठः.

करुणः । तमन्विति तदनुभावनिःशामादिकथनम् । व्यभिचारिणश्च स्वापा-  
पस्मारादयः । इष्टनाशात्करुणो यथा कुमारसंभवे—

‘अयि जीवितनाथ जीवमीत्यभिभायोन्त्यतया तया पुरः ।

ददृशे पुरुषाङ्गति क्षितौ हरकोपानलभस्म केवलम् ॥’

इत्यादि रत्नप्रलयः । अनिष्टावासः सागरिकाया बन्धनाद्यथा रत्नावल्याम् ।

प्रीतिभत्त्यादयो भावा मृगयाक्षादयो रसाः ।

हर्षोत्साहादिषु स्पष्टमन्तर्भावान्व कीर्तिः ॥ ८३ ॥

स्पष्टम् ।

पद्मत्रिशङ्खषणादीनि सामादीन्येकविंशतिः ।

लक्ष्यसंध्यन्तराङ्गानि सालंकारेषु तेषु च ॥ ८४ ॥

‘विभूषणं चाक्षरसंहतिश्च शोभाभिमानौ गुणकीर्तनं च’ इत्येवमादीनि  
पद्मत्रिशत्काव्यलक्षणानि । ‘साम भेदः प्रदानं च’ इत्येवमादीनि संध्यन्तराण्ये-  
कविंशतिः मादिप्विवालंकारेषु हर्षोत्साहादिपन्तर्भावान् पृथगुक्तानि ।

रम्यं जुगुप्सितमुदारमयापि नीच-

मुग्रं प्रसादि गहनं विकृतं च वस्तु ।

यद्वाप्यवस्तु कविभावकभाव्यमानं

तन्नास्ति यन्न रसभावमुपैति लोके ॥ ८५ ॥

विष्णोः सुतेनापि धनंजयेन विद्वन्मनोरागनिवन्वहेतुः ।

आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठीवैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् ॥ ८६ ॥

इति श्रीविष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ दशरूपावलोके  
रसविचारो नाम चतुर्थः प्रकाशः समाप्तः ।

समाप्तथायं ग्रन्थः ।

१. ‘लक्ष्यसंध्यन्तराङ्गानि’ इति पाठः. २. ‘भावात्’ इति पाठः.



## दशरूपकावलोके प्रमाणत्वेन समुपन्यस्तानां ग्रन्थानां ग्रन्थकाराणां च नामानि ।

---

अमरुशतकम्—४९, ५६, ५७, ५८, ६१, ६२, ७३, १०५, १०८, १११, १३२.  
उत्तरचरितम् (उत्तररामचरितं वा)—२७, २८, ३९, ८३, ८४, ८५, १०९,

१०९, १२५, १२९, १३३,

उदाचराधवम्—७६, ७९, ८८, १०२, ११०.

कर्षूरमञ्जरी—८३.

कादम्बरी—१३३.

कामसूत्रम्—१२८.

काव्यनिर्णयः—१२०.

किरातम्—१०९.

कुमारसंभवम्—६४, ६५, ६८, १०९, ११२, ११३, ११८, १२५, १२८, १३९.

छालितरामम्—२७, ८३, ८५.

धनिकः (अवलोककृत) —४८, ५१, ५२, ५४, ५६, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८,  
६९, ७०, ७३, ९८, १०९, ११०, १२९, १३१, १३३, १३५,

नागानन्दम्—४६, ५०, ५३, ५९, ७२, १३४.

पञ्चगुप्तः—६८.

पाण्डवानन्दम्—८२.

प्रियदर्शिका (प्रियदर्शना वा)—७४, ७६.

बृहत्कथा (गुणाद्यनिर्मिता)—४१, ४२, ११४.

भट्टबाणः—६६.

भरतमुनिः—१४.

भर्तृहरिः—९७.

भर्तृहरिशतकम्—४४, १०२.

भवभूतिः—४७.

महाभारतम्—८८.

माघम्—५५, १०९, १०२, १०४, १०७, १०८, १३१.

मालतीमाधवम्—११, ४५, ५०, ६३, ६७, ७३, ७५, १०६, ११४, ११५,  
१२६, १३३, १३५.

मालविकाश्मिन्त्रम्—४०, ४४, ६२, ७२, ७३, ८६, १२६.

**मुञ्जः—१३०.**

**मुद्राराक्षसम्** (वृहत्कथामूलम्)—४९, ७५, ८५.

**मृच्छकटिका**—२९, ४५, ५९, ९०.

**मेघदूतम्—१३२.**

**रघुः** (रघुवंशो वा)—४४, १११, १३३.

**रत्नावली**—५, ६, ७, ८, ९, १०, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९,  
२०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३२, ३३, ३४,  
३५, ३६, ३७, ४५, ५९, ७२, ७६, ७९, ८०, ८१, ८४, ९०९,  
१०३, १३४, १३८, १३९.

**रामाभ्युदयम्—२९.**

**रामायणम्—४, ४९, ५०, ७५, ८८, १२३.**

**रुद्रः—१३०.**

**वाक्पतिराजदेवः—१२९.**

**विकटनितम्बा—११४.**

**विक्रमोर्वशी—८३, ८३, १३३.**

**विद्वशालभञ्जिका—१२८.**

**वीरचरितम्—८, ३९, ४०, ४३, ४४, ५१, ५२, ७४, ७५, ८८, १०९, १०४,  
१०५, १०६, १०७, १११, ११३, १३५, १३६.**

**वेणीसंहारम्—५, ९, ११, १२, १३, १४, १६, २२, २३, २४, २५, २६, २७,  
२८, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ४१, १०५,  
१११, १३६.**

**शाकुन्तलम्—६५, ६६, ८०, ८७, १२८.**

**षट्सहस्रीकृत्—१७.**

**हनुमन्त्राटकम्—४४.**

# दशरूपकावलोकोदाहृतश्लोकानां मात्रकावर्ण- क्रमेणानुक्रमणी ।

---

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
अकृपणमतिः कामं जीव्यात् ...	वेणीसंहारे ... ... ...	३०
अचिन्नं नयनाम्बु ... ...	[अमरशतके]	११२
अणाहुणाहुमदेवित्य ...	... ... ... ...	१११
अत्रान्तरे किमपि वारिवम	मालतीमाधवे	६७
अथैव किं न विष्टजेयमहं	वेणीसंहारे ...	३०
अद्वैतं सुखदुःखयोरनु ...	[उत्तररामचरिते]	४९
अनाप्रातं पुष्पं किसलय ...	शाकुन्तले ...	६५
अन्धः स्वैरपि संयताप्र ...	मम (धनिकस्य)	५१
अन्धः कल्पितमङ्गल ...	[मालतीमाधवे]	११५
अन्यासु तावदुपमदं ...	विकटनितम्बायाः	११४
अन्योन्यास्फालभिन्नद्विप	वेणीसंहारे ...	१३
अप्रियाणि करोत्येष	वेणीसंहारे ...	३०
अभिव्यतालीकः सकल ...	मम (धनिकस्य)	७३, १३१
अभ्युद्रूते शशिनि ... ...	... ... ... ...	६८
अभ्युत्रतस्तनमुरो नयने ...	मम (धनिकस्य)	५६
अयमुदयति चन्द्रश्च	... ... ... ...	९८
अथ जीवितनाथ जीवती	कुमारसंभवे	१३९
अर्धिष्मन्ति विदार्थ ...	... ... ... ...	८६
अर्थिते प्रकटीकृतेऽपि ...	वीरचरिते ...	१०४
अलसलुलितमुग्धान्यध्व	उत्तररामचरिते	१०१
अशोकनिर्भित्तिपद्म ...	कुमारसंभवे	१२१
असंशयं क्षत्रपरिप्रह	शाकुन्तले ...	१२८
असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः	कुमारसंभवे ...	१२५
अस्तमितविषयसङ्गा	[गोवर्धनस्य]	१०४
अस्तापांत्समस्तभासि	रत्नावल्याम्	१, १२
अस्मिन्नेत्र लताएहे	उत्तररामचरिते	१२९
अस्याः सर्गविधी ...	[विक्रमोर्वश्याम्]	९६

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
आगच्छागच्छ सजं कुरु... ...	मम (धनिकस्य) ... ... ...	११०
आतान्त्रतामपनयामि ... ...	रत्नावल्याम् ... ... ...	२३
आत्मानमालोक्य च ... ...	कुमारसंभवे ... ... ...	११३
आदृष्टप्रसरात्रियस्य ... ...	अमरुशतके ... ... ...	६१
आनन्दाय च विस्याय ... ...	वीरचरिते ... ... ...	७४
आत्रप्रोतवृहत्कपाल ... ...	वीरचरिते ... ... ...	१३५
आयस्ता कलहं पुरेव ... ...	[अमरुशतके]	६७
आयाते दियिते मरु ... ...	[अमरुशतके]	१०३
आलापान्नविलासो ... ...	... ... ...	५५
आशब्दप्रहणादकुण्ठपरशो	वर्णसंहारे ... ... ...	१५
आक्षिष्ठभूमि रसितार ... ...	माघे ... ... ...	१०८
आसादितप्रगटनिर्मल	... ... ...	७९,८१
आदृतस्यानिषेकाप	... ... ...	८६,८८
इन्दीवरेण नयनं ... ...	... ... ...	१३१
इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतं ... ...	उत्तरचरिते ... ... ...	८५
इयं सा लोलाक्षी त्रिभु ... ...	... ... ...	११९
उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं ...	[मालविकाग्रिमित्रे]	४८
उच्छ्वसन्मण्डलप्रान्तरेख	मम (धनिकस्य) ... ...	५४
उजृम्भाननमुलसत्	मम (धनिकस्य) ... ...	९८
उत्कृत्योत्कृत्य कृत्ति	मालतीमाधवे ... ...	१३५
उत्कृत्योत्कृत्य गर्भानपि	वीरचरिते ... ...	१०४
उत्तालताडकोत्पातदर्शने	वीरचरिते ... ...	५१
उत्तिष्ठ दूति यामो यामो ...	... ... ...	६१
उत्पत्तिर्जमदमितः स	वीरचरिते ... ...	४३
उत्सङ्घे वा मलिनवसने	मेघदूते ... ...	१३२
उद्भामोत्कलिकां विपाण्डुर	[रत्नावल्याम्] ... ...	५
उन्मीलद्वदेन्दुर्दीपि	... ... ...	६५
उरसि निहितस्तारो हारः	अमरुशतके ... ...	६२
एकत्रासनसंस्थितिः	अमरुशतके ... ...	५७
एकं ध्याननिमीलना	... ... ...	११५
एकेनाक्षणा प्रवित्त	[चन्द्रकस्य] ... ...	११६
एकत्तो रुझ धिथा	... ... ...	११५
एतां पश्य पुरःस्थली	... ... ...	५१

श्लोकः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
एते वयममी दाराः.... ...	[कुमारसंभवे]	५३
एवंवादिनि देवर्णैः... ...	कुमारसंभवे	११२
एवमालि निगृहीतसाध्व... ...	[कुमारसंभवे]	१०२
एत्येहि वत्स रघुनन्दन ...	वीरचरिते	१११
औत्सुक्येन कृतत्वरा ...	[रत्नावल्याम्]	८०
कः समुचिताभिषेकादार्यै	...	११२
काए कृत्वावशेषं कनक ...	रत्नावल्याम्	७६
कपोले जानक्याः करि ...	[हनुमधाटके]	५१
कर्णदुःशासनवधात् ...	वेणीसंहारे	२६
कर्णार्पितो रोद्रकप्राय ...	कुमारसंभवे	६८
कर्ता शृतच्छलानां जनुमय ...	वेणीसंहारे	८४
कस्त्वं भोः कथयामि ...	...	१००
का त्वं शुभे कस्य ...	रघौ	४५
कान्ते तल्पमुपागते ...	[अमरुशतके]	५७
का शश्या गुणिनां ...	पाण्डवानन्दे	८२
किं लोभेन विलङ्घिनः ...	...	११२
किं गतेन न हि युक्त ...	[किरातार्जुनीये]	१३१
किं धरणीए मिअद्वौ ...	रत्नावल्याम्	२९
किमपि किमपि मन्दं ...	उत्तररामचरिते	१३३
कुलवालिआए पेच्छह ...	...	५३
कृतगुरुमहदादिक्षोम ...	वेणीसंहारे	३६
कृतेऽप्याज्ञामहो कथमिव ...	मम (धनिकस्य)	१३१
कृशाश्वान्तेवासी जयति ...	वीरचरिते	३९
कृष्ण केशेषु भार्या ...	वेणीसंहारे	३०
केलीगोत्तकखलणे	...	१३०
कैलासोद्ग्रासार ...	[वीरचरिते]	४७,४८
कोपात्कोमललोलाहु ...	अमरुशतके	५७
कोऽपि सिंहासनस्यावः ...	छलितरामे	८३
कोपे यत्र भुक्तिरचना	[अमरुशतके]	५८
कोधान्धैर्यस्य मोक्षात्क्षत ...	वेणीसंहारे	३७
क्रचित्ताम्बूलात्तः क्रचिद्	[अमरुशतके]	५७
क्षितो हस्तावलमः प्रसभ ...	अमरुशतके	१११
खर्वग्रन्थिविमुक्तसंधि ...	...	१३१

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
गमनमलसं शून्या ...	मालतीमाधवे ...	७३
चक्षुर्लुमधीकणं ...	... वेणीसंहारे ...	१२५
चक्षुद्वजध्रमितचण्डगदा ...	मम (धनिकस्य) ...	११,२३
चलति कथंचित्पृष्टा ...	बृहत्कथायाम् ...	१०९
चाणक्यनामा तेनाथ ...	पद्मगुप्तस्य ...	४२
चित्रवर्तिन्यपि नृपे ...	माघे ...	६९
चिररतिपरिखेदप्राप्त ...	वेणीसंहारे ...	१०८
चूर्णिताशेषकारव्यः ...	मालतीमाधवे ...	३२
जगति जयिनस्ते ते ...	मम (धनिकस्य) ...	१२६
जं किं पि पेच्छमाणं ...	वेणीसंहारे ...	६५
जन्मेन्दोरमले कुले ...	मालतीमाधवे ...	२८
जातं मे परष्ण भस्म ...	... वेणीसंहारे ...	१२७
जीयन्ते जयिनोऽपि सान्द्र ...	उदात्तराघवे ...	७६
ज्ञातिप्रीतिर्मनसि न कृता ...	वेणीसंहारे ...	२७
जवलतु गगने रात्रौ रात्रा ...	मालतीमाधवे ...	६७
णेउरकोडिविलग्गं ...	[गाथासप्तशत्याम्] ...	१३१
तं वीक्ष्य वेपयुमती ...	कुमारसंभवे ...	१२८
तं चिअ वअणं ते चेअ ...	मम (धनिकस्य) ...	६४
तत उदयगिरेरिवैक ...	मालतीमाधवे ...	४५
ततश्चाभिज्ञाय स्फुरद ...	अमरुशतके ...	१०५
तथा व्रीडाविधेयापि ...	मम (धनिकस्य) ...	६६
तदवितथमवादीयन्मम ...	[माघे] ...	७२
तनुत्राणं तनुत्राणं शख्यं ...	... वेणीसंहारे ...	११०
तवास्मि गीतरागेण ...	शाकुन्तले ...	८०
तह ज्ञति से पअत्ता ...	मम (धनिकस्य) ...	६५
तह दिँ तह भणिअं ...	मम (धनिकस्य) ...	६७
तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेद्य ...	कुमारसंभवे ...	६५
ताव चिअ रइसमए ...	[गाथासप्तशत्याम्] ...	५५
तावन्तस्ते महात्मानो ...	उदात्तराघवे ...	१०२
तिष्ठन्भाति पितुः पुरो ...	[नागानन्दे] ...	४६,४७
तीर्णे भीममहोदधौ ...	वेणीसंहारे ...	२५
तीव्रः स्मरसंतापो न ...	रत्नावल्याम् ...	२१

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
तीव्राभिषङ्गप्रभवेन	कुमारसंभवे	१०९
तेनोदितं वदति याति	... वेणीसंहारे	६७
त्यक्त्वोत्थितः सरमसं	वीरचरिते	२८
त्रयास्राता यस्तवायं	माघे	४४
त्रस्यन्ती चलशक्फरी	... वीरचरिते (?)	१०४
त्रैलोक्यैश्वर्यलक्ष्मी	... वीरचरिते (?)	४७
त्वं कर्णः शिविर्मासं	... उत्तरचरिते	४३
त्वं जीवितं त्वमसि मे	... वीरचरिते	८४
त्वं ब्रह्मवर्चसधरो...	मालविकाश्चिमित्रे	१३६
दाक्षिण्यं नाम विम्बोष्टि	[गाथासप्तशत्याम्]	६२
दिअहं खु दुक्षिखाए	मालविकाश्चिमित्रे	६६
दीर्घांशं शरदिन्दुकान्ति	वेणीसंहारे	१२६
दुःशासनस्य हृदयक्षतजा	रत्नावल्याम्	१४
दुःहज्ञाणांगाऽत्रो लजा	वीरचरिते	१५
दूराहवीयो धरणीधरामं	वीरचरिते	१०१
दृष्टि है प्रतिवेशिनि	[विज्ञकायाः]	५८
दृष्टिः सालसतां विभास्तं	... उत्तररामचरिते]	५४,६४
दृष्टिस्तृणीकृतजगत्रय	अमरुशतके	५१
दृष्ट्याकासनसंस्थिते प्रिय	... रत्नावल्याम्	५८,७३
देआ पसिभ णिअन्तसु	... अमरुशतके	६६
देव्या मद्रचनायथाभ्युप...	... अमरुशतके	३२
देवे वर्षत्यशनपवन	... अमरुशतके	११०
देशैरन्तरिता शतैश्च	... अमरुशतके	१३२
दोर्दण्डाश्वितचन्द्रोखर	... अमरुशतके	१३६
द्रक्ष्यन्ति न चिरात्सुं	वेणीसंहारं	३१,८५
द्वीपादन्यस्मादपि	रत्नावल्याम्	५,८,७९,८१
धिग्यकशक्तिं	[हनुमआटके]	१००
धृतायुधो यावदहं	वेणीसंहारे	२३
न खलु वयमसुध्य	माघे	५५
न च भेऽवगच्छति यथा	[माघे]	६२
न जाने संसुखायाते	[अमरुशतके]	५६
नन्वेष राक्षसपते: स्वलितः	वीरचरिते	११३

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
न पण्डिताः साहसिका ...	...	१०९
न मध्ये संस्कारं कुसुम ...	...	५४
नवजलधरः सन्नद्वोऽयं ...	[विक्रमोर्बेश्याम्] ...	११३
नवनखपदभङ्गं गोप ...	[माघे] ...	६९, १२०
नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणना... ...	रत्नावल्याम् ...	७६, १३८
नान्दीपदानि रतिनाटक... ...	...	६९
निःश्वासा वदनं दहन्ति... ...	[अमरुशतके] ...	६९
निजपाणिपङ्कवतट ...	[माघे] ...	६०
निद्रार्धमीलितदशो ...	[बिल्हणस्य] ...	१०७
निर्मलेन मयाम्भसि ...	रुद्रस्य ...	१३०
निर्वाणवैरिदहनाः प्रशमा ...	वेणीसंहारे ...	८१
नूनं तेनाय वीरेण ...	वेणीसंहारे ...	३०
पक्षमाग्रप्रथिताश्रुविन्दु ...	...	१०४
पञ्चानां मन्यसेऽस्माकं ...	वेणीरंहारे ...	२६
पठालये पत्यौ नमयति ...	अमरुशतके ...	१०८
पण्डकुविआण दोळवि ...	[गाथासप्तशत्याम्] ...	१२९
पत्युः शिरथन्दकलाम ...	[कुमारसंभवे] ...	७२
परिच्छुतस्तल्कुचकुम्भ ...	रत्नावल्याम् ...	१७
परिषदियमृषीणमेष ...	वीरचरिते ...	१०
पशुपतिरपि तान्यहनि ...	कुमारसंभवे ...	११३
पाशाङ्कुषेन भूमि किस ...	[अमरुशतके] ...	७०
पित्रोविधातु शुशूषां ...	[नागानन्दे] ...	४६
पुण्या ब्राह्मण जातिः ...	[वीरचरिते] ...	४८, ७५
पुरस्तन्या गोत्रस्त्वलन ...	अमरुशतके ...	१०५
पूर्यन्तां सलिलेन रल ...	वेणीसंहारे ...	३१
पौलस्त्वपीनभुजसंपदु ...	...	११०
प्रणयकुपितां द्यूता देवीं ...	{ श्रीवाकपतिराजदेवस्य ...	१२९
प्रणयविशदां दृष्टि वक्ते ...	{ श्रीमुञ्जस्य ...	१३०
प्रथमजनिते वाला मन्त्रौ ...	रत्नावल्याम् ...	२०
प्रयत्नपरिवेधिता ...	...	५४
प्रसीदत्यालोके किमपि ...	वेणीसंहारे ...	२२
प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति ...	मम (धनिकस्य)	४८
	रत्नावल्याम् ...	१७

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
प्रहरकमपनीय खं	माधे	१०८
प्रहरविरतौ मध्ये...	अमरुशतके	१३२
प्राप्ताः श्रियः सकलकाम...	[भर्तृहरिशतके]	१००
प्राप्ता कथमपि दैवात्	रत्नावल्याम्	१७
प्राप्य मन्मथरसादति	माधे	१०२
प्रायश्चित्तं चरिष्यामि	वीरचरिते	४४,५२,१०५
प्रारब्ध्यां तरुपुत्रकेषु	...	११०
प्रारभ्यते न खलु विघ्न	भर्तृहरिशतके	४४
प्रारम्भेऽस्मिन्नासिनो	रत्नावल्याम्	५,६,८
बाले नाथ विसुअ...	अमरुशतके	५६
बाहोर्वलं न विदितं...	हनुमन्नाटके	४४
ब्राह्मणातिक्रमत्यागो	वीरचरिते	४८,१०६
ब्रूत् नूतनकूष्माण्ड	...	५२
भम धम्मिअ वीसद्वो	[गाथासप्तशत्याम्]	११८
भिक्षो मांसनिषेवण	...	१३७
भुक्ता हि मया गिरयः	...	८६
भूमौ क्षिप्त्वा शरीरं	वेणीसंहारे	३४
भूयः परिभवङ्गान्ति	वेणीसंहारे	११
भूयो भूयः सविनगरी	मालतीमाधवे	१२६
भूमङ्गे सहसोद्रता	[रत्नावल्याम्]	६७
मखशतपरिपूतं गोत्र	मृच्छकटिकायाम्	२९,४५
मज्ज्ञ पट्टणा एसा	रत्नावल्याम्	३०
मत्तानां कुसुमरसेन	विक्रमोर्बश्याम्(?)	८३
मथनामि कौरवशतं समरे	वेणीसंहारे	१०
मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे	कुमारसंभवे	१२५
मध्याहं गमय ल्यज श्रम...	...	७२
मन्यायस्तार्णवाम्भःपुतु	वेणीसंहारे	९
मनोजातिरनाधीना	विक्रमोर्बश्याम्	८२
महु एहि किं गिवालअ	...	६३
मा गर्वेमुद्रह कपोल	...	६०
मातः कं हरये निधाय	...	६९
मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य	[भर्तृहरिशतके]	११५

क्षेत्रकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
मुनिरथमय वीरस्तादश ...	वीरचरिते ...	१०६
मुहुरुपहसितामिवा ...	माघे ...	१३१
मृगरूपं परित्यज्य ...	उदात्तराघवे	११०
मृगशिशुहशत्स्यास्तापि ...	... ...	६३
मेदश्छेदकृशोदरं लघु ...	शाकुन्तले ...	८५
मैनाकः किमयं रुणदि ...	[हनुमन्त्राट्के]	१०६
यत्सत्यत्रत्तमङ्गभीरुमनसा ...	वेणीसंहारे ...	१२
यदि परगुणा न क्षम्यन्ते ...	[महेन्द्रस्य]	१०५
यद्विवादिभिरुपासित	वीरचरिते ...	१३
यद्यत्प्रयोगविषये ...	मालविकाम्निमित्रे	११
यद्विस्मयसितमस्तमिता	मालतीमाघवे	११
यमतु यातु किमनेन	... ...	१६
यातो विकम्बाहुरात्म	रत्नावल्याम्	५३
यातोऽस्मि पद्मनयने	रत्नावल्याम्	५३
यान्त्या मुहुर्विलितकन्धर	मालतीमाघवे	११, १२६
युध्मच्छासनलङ्घना	वेणीसंहारे ...	१०५
ये चत्वारो दिनकर	[महानाटकात्]	४४
येनावृत्य मुखानि साम	छलितरामे ...	२७
ये बाहौ न युधि	... ...	१००
योगानन्दयशःशेष	बृहत्कथायाम्	४२
रक्षो नाहं न भूतं रिपु	वेणीसंहारे ...	३२
रण्डा चण्डा दिक्खिलदा	कर्पूरमञ्जर्याम्	८३
रतिक्रीडायूते कथमपि	मम (धनिकस्य)	६६
राज्ञो विपद्मन्धुवियोग	... ...	१००
राज्यं निर्जितशत्रु	रत्नावल्याम् ...	४५, १०२
राम राम नयनाभिराम	वीरचरिते ...	४३
रामो मूर्धि निधाय कानन	उदात्तराघवे	७९
लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्घ	मम (धनिकस्य)	१२५
लघुनि हणकुटीरे	[कमलायुधस्य]	१०७
लज्जापज्जत्पसाहणाइ	... ...	५३
लाक्षागृहानलविषान्न	वेणीसंहारे ...	८१, १३६

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
लाक्षालक्ष्म ललाटपट	अमरशतके	४९
लालां वक्षासवं वेति	...	१३६
लावण्यकान्तिपरिपूरित	...	११८
लावण्यममथविलास	मम (धनिकस्य)	५२
लावण्यामृतवर्धिणि	मम (धनिकस्य)	१३४
लीनेव प्रतिविम्बितेव	मालतीमाधवे	१०६
लुलितनयनताराः	माधे	१०१
वत्सस्याभयवारिधेः	उदाच्चराधवे	१११
वयमिह परितुष्टा	भर्तृहरिशतके	१०२
वाताहृतं वसनमाकुलमुत्त	...	११०
विनिक्षणरणतकठोर	...	११४
विनिश्चेतुं शक्यो न	उत्तररामचरिते	१०९, १३३
विरम विरम वह्ने मुब्	रत्नावल्याम्	१११
विरोधो विश्रान्तः प्रसरति	उत्तरचरिते	२८
विवृण्वती शैलसुतापि	कुमारसंभवे	११८
विश्वज सुन्दरि संगम	मालविकाश्रिमित्रे	७३
विस्तारी स्तनभार एष	...	५४
दुद्रास्ते न विचारणीय	उत्तरचरिते	२७
द्रुद्रोऽन्धः पतिरेष मक्क	भोजप्रबंधे	१०३
वेवइ सेअदवदनी	...	९९
व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना	[नागानन्दे]	१२५
व्याहता प्रतिवचो न	[कुमारसंभवे]	५४, १२८
जठोऽन्यस्याः काङ्गीमणि	[अमरशतके]	४९
शाखप्रयोगवुरलीकलहे	वीरचरिते	७४
शाखमेतत्सम्मुच्छज्य	...	१३८
शाखेषु निष्ठा सहजश्च	मालतीमाधवे	६३
शिरामुखैः स्थनदत एव	नागानन्दे	४६, ५३
शीतांशुमुखमुत्पले तत्र	रत्नावल्याम्	२१
शोकं श्रीवन्धयनसलिलै	वेणीसंहारे	३१
श्रीरेषा पाणिरव्यस्याः	रत्नावल्याम्	१८
श्रीहर्षी निपुणः कविः	रत्नावल्याम्	८०
श्रुताप्सरोगीतिरपि	कुमारसंभवे	६४

श्लोकाः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
श्रुत्यायातं बहिः कान्त ...	मम (धनिकस्य) ...	६६
श्लाघ्याशेषतरुं सुदर्शन ...	... ... ... ...	११६
सकलरिपुजयाशा यत्र ...	वेणीसंहारे ...	३१,५४
सखि स विजितो वीणा ...	... ... ...	६०
सच्च जाणइ दहुं सरि ...	[गाथासप्तशत्याम्]	६३
स च्छिन्नबन्धुतुत ...	रघुवंशो ...	१११
सततमनिर्वृतमानस ...	... ... ...	७७
सयश्चिन्नशिरःश्वभ्र ...	उदात्तराघवे	१०३
सन्तः सञ्चरितोदय ...	... ... ...	८३
समूभङ्गं करकिसल्या ...	मम (धनिकस्य)	७०
समारुद्धा प्रीतिः प्रणय ...	रत्नावल्याम्	२२
संप्राप्तेऽवधिवासरे ...	... ... ...	१०६
सरसिजमनुविद्रुं शैव ...	शाकुन्तले	६६
सव्याजं तिलकालकान्वि ...	मम (धनिकस्य)	६९
सव्याजैः शपथैः प्रियेण ...	रत्नावल्याम्	२८
सहभृत्यगणं सवान्धवं ...	वेणीसंहारे	१४
सद्भ्वा विदधीत न ...	किराते	१०९
सालोए जिभ्र सूरे ...	[गाथासप्तशत्याम्]	७२
सुधावद्रग्रासैरुपवन ...	विद्धशालभञ्जिकायाम्	१२८
सुमुत्वं नवनीतकल्प ...	मम (धनिकस्य)	१२९
स्तनतटमिदमुनुहं ...	... ... ...	५६
स्तनावालोक्य तन्वङ्ग्याः ...	... ... ...	१२८
स्तिमितविकसिताना ...	मालतीमाघवे	१२६
ज्ञाता तिष्ठति कुन्तलेश्वर ...	... ... ...	४९
स्पृष्टस्त्वयैष दयिते ...	रत्नावल्याम्	१३४
स्फूर्जद्रव्यसहस्रनिर्भित ...	वीरचरिते	४३,५१
स्मरदवथुनिर्भितं गूढ ...	मम (धनिकस्य)	६९
स्मरनवनदीपूरेणोदा: ...	[अमरुशतके]	५५
स्मरसि सुतगु तस्मिन् ...	उत्तररामचरिते	१२५
स्मितज्योत्त्वाभिस्ते ...	मम (धनिकस्य)	१३१
खगेहातपन्थार्न तत ...	... ... ...	१३८
खसुखनिरभिलाषः ...	[शाकुन्तले]	४७

श्लोकः ।	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	पृष्ठे ।
स्वेदाभ्यः कणिकाश्विते ...	कविनाम ग्रन्थनाम वा ।	५६
हंस प्रथच्छ मे कान्तां ...	[विक्रमोर्वश्याम]	५६
हरखु किंचित्परिलुप्त ...	कुमारसंभवे	६४
हर्म्याणां हेमशृङ्खलियमिव	रत्नावल्याम्	२७
हसिअमविआरमुद्रं	... ... ...	५३
हस्तैरन्तर्निहितवचने	... ... ...	१२५
हावहारि हसितं	माघे	१०७
हृन्मर्मभेदिपतदुत्कटक	वीरचरिते	१०७
हेरम्बदन्तमुसलोलिखितै	वीरचरिते	७५
होन्तपहिअस्त जाआ	[गाथासप्तशत्याम्]	१३२
दिया सर्वस्यातौ हरति	रत्नावल्याम्	१०९



## ब्रह्मकर्मसमुच्चय.

( विषय ३२५. )

विद्वत्कंठीं अर्पू गुंफुनि माला प्रयोगसुमनांची ॥

यद्गङ्घाधाराणानें तुष्टो वृत्ती सदा बुधमनांची ॥

ब्रह्मकर्माचा समुच्चय ह्याणजे एका ग्रंथांत ब्रह्मकर्मसंबंधी बहुतेक विषयांचा समावेश होय. तो या ग्रंथांत असल्यावरून हा ग्रंथ ब्राह्मणमानाच्या व विशेषेकरून प्रत्येक वैदिक, याज्ञिक, शास्त्री आदिकरून भिसुकवर्गाच्या संग्रहीं असणे मोळ्या अगत्याचे आहे. या ग्रंथाचीं प्रकरणे चार असून ज्या ठिकाणीं जो विषय पाहिजे तो त्या ठिकाणीं साधेल तेवढा सप्रमाण जोडला आहे. यांत पहिल्यानें बहुतेक आहिककर्म, श्रावण्यादिप्रयोग, घोडशसंस्कार, दुष्टजननशांति, ब्रतोद्यापणे, देवप्रतिष्ठादि नित्यनैमित्तिक, इष्टापूर्ते व शांतिकपौष्टिक सर्व कर्मे, उपवासनशांति, सर्वप्रायश्चित्तादि, साग्र अंत्येष्टीप्रयोग, संन्यास व आशौचनिर्णय इत्यादि सर्व विषय क्रमानें आले आहेत. ब्रतोद्यापनादिकांत ठिकठिकाणीं लागणारीं सर्वतोभद्रादि ५ रंगीत मंडळे व कांहीं साधीं मंडळे व यंत्रेही मोळ्या प्रयत्नानें तयार करून यांत जोडलीं आहेत. प्रसंगीं एखाद्याला विस्मरणानें मंत्राबद्दल अडचण पडल्यास ती दूर व्हावी ह्याणून यांत आलेल्या सूक्तांचा व मंत्रांचा अकारादिवर्णक्रमानें कोश तयार करून तो विषयक्रमापुढे जोडला आहे, त्या योगानें पाहिजे तें सूक्त व पाहिजे तो मंत्र सहज सांपङ्गून अडचण दूर होईल. या पुस्तकांत विषय आले आहेत त्यांबाहेर प्रयोगविषय मुठींच राहिला नाहीं असें जरी आमचेचे ह्याणणे नाहीं, तरी पण बहुतेक व्यावहारिक विषय यांत येऊन गेले आहेत असें ह्याणण्यास हरकत नाहीं. सर्व विषय क्रमानें जोडण्याकरितां आमच्यानें होईल तेवढा प्रयत्न केला आोह खरा; तरी कित्येक विषय मागाहून मिळाले त्यांची आवश्यकता वाटल्यावरून कचित् स्थलीं क्रम सोडूनहीं संग्रह करणे भाग पडले. हें पुस्तक वे. शा. सं. रा. रा. वासुदेवशास्त्री पणशीकर यांनी तयार केले आहे. ह्यांत कागद चांगले जाड व मोहरेदार वापरले असून छपाई सुरेख केली आहे.

ग्राहकांस जडजोखीम वाढून नये ह्याणून ह्याची किंमत अगदी थोडी ह्याणजे २। रु. ठेविली आहे. ट. हां. ९ आणे.

## नामलिंगानुशासन.

( अमरकोश. )

हे पुस्तक आजपर्यंत बहुतेकांनी सटीक व मूळ असे छापून प्रसिद्ध केले व करीतही आहेत, त्यावरून केवळ याचें नांव ऐकून लोकांस म-हत्त्व वाटणार नाहीं, परंतु हे तसें नसून केवळ मूळ मात्रच आहे वरें तथापि याच्या प्रतिश्थोकांत येणारी ज्या ज्या वस्तूचीं नांवें असतील तीं दर वृष्टांत त्या त्या ओळीच्या बाजूस मराठींत दिलीं आहेत. व कोणच्या वस्तूचीं किती हे समजप्याकरितां बाजूस अंकही दिले आहेत. लवकर ध्यानांत येण्याकरितां विशेषनामे तेवढीं जाड ठेवून बाकी मजकूर बारीक टैपांत ठेविला आहे व ठिकठिकाणीं अधिक माहिती देणे ती पृष्ठाच्या शेवटीं दिली आहे. ग्रंथाच्या शेवटीं संस्कृत मूळपदांचा व बाहेर दाख-विलेल्या मराठी शब्दांचा अकारादिवर्णकमकोश जोडला आहे. त्या यो-गांने हे पुस्तक आबालवृद्धांला व विशेषतः अभ्यासी मुलांला फारच उप-युक्त होईल अशी आशा आहे. हे वे. शा. सं. रा. रा. विनायक ना-रायण शास्त्री जोशी यांनी तयार केले आहे. किं. १। रु.ट.ख. ५३ आणे.

## तोषणीसार—श्रीमद्भागवत दशमस्कंध.

हा अति महत्त्वाचा ग्रंथ आजपर्यंत दुर्मिळ होता. मूळ तोषणी तर अखंत वि-स्तृत व अवघड असत्यामुळे त्यावर प्रसिद्ध विद्वच्छिरोमणी धर्मसिंहुकार श्रीमद्ननं-सुत काशीनाथोपाध्याय यांनी थोडक्यांत पण मनोहर अशी ही तोषणीसार नांवाची टीका केवळ लोकोपकारार्थ तयार केली आहे. हीत मूळ श्लोक न सोडतां प्रत्येकाची व्याख्या केली असून स्थलविशेषी अभिनव अर्थातरे, ध्वनितार्थ, व्यंग्ये इ-त्यादि चित्तवेधक साधली असून प्रत्येक अध्यायाच्या आरंभी व मधून मधून कथासं-दर्भ फिरतो त्या त्या ठिकाणीं एकेक व कोठे कोठे दोन दोन पद्ये दिलीं आहेत तीं अलंकार, प्रास व यमके यांनी ओतप्रोत भरलेली असून भक्तिरसप्रधान आहेत. या अपूर्व ग्रंथाचा सर्वोत्तम थोडक्यांत लाभ व्हावा झाणून आझीं तो महत्प्रयासानं मिळवून प्रसिद्ध विद्वानांकद्वान शुद्ध करवून मोहरेदार जाड कागदांवर सुदर अक्षरांनी छापून प्रसिद्ध केला आहे. किंमत अवधी ३ रु.ट.ख. १३





कि. ट. ख.

सङ्कृत, महिनाथकृत  
संजीविनी टीकेसहित ॥८॥  
,, इंग्रजी टीपांस-  
हित ... ... ... ॥९॥

यमुनाष्टक-शंकराचार्य-  
कृत ... ... ... ॥१॥ ॥१॥

रघुवंश काव्य-कालिदा-  
सङ्कृत, महिनाथकृत  
संजीविनी टीकेसहित ॥१॥ ॥१॥  
,, (सूक्ष्माक्षर) ... ॥१॥ ॥१॥

रबसमुच्चय ... ... ॥१॥ ॥१॥

रत्नावली नाटिका-श्रीहर्ष-  
देवकृत... ... ... ॥१॥ ॥१॥

,, इंग्रजी टीपांस-  
हित ... ... ... ॥१॥ ॥१॥

रसिकाष्टक काव्य-नारा-  
यणभट्ट पर्वणीकरकृत ॥१॥ ॥१॥

रामगीता व रामगीता-  
माहात्म्य ... ... ॥१॥ ॥१॥

रामचंद्रिका (गुंजीकर-  
कृत संस्कृत शब्दरूपा-  
वलि)... ... ... ॥१॥ ॥१॥

रामरक्षास्तोत्र ... ... ॥१॥ ॥१॥

रामस्तवराजस्तोत्र ... ॥१॥ ॥१॥

रामायण-वाल्मीकिकृत,  
रामकृत तिलकटीकेस-  
हित ... ... ... ॥१॥ ॥१॥

रुद्र... ... ... ॥१॥ ॥१॥

लघुकौमुदी-वरदराज-  
कृत ... ... ... ॥१॥ ॥१॥

लघुयोगवासिष्ठ, आत्म-  
सुखकृत वासिष्ठचंद्रिका  
टीकेसहित ... ॥१॥ ॥१॥

लक्ष्मीस्तोत्र-अगस्त्यकृत ॥१॥ ॥१॥

वेदांतसार-हें नृसिंहसर-  
स्वति स्वामिकृत सुबो-  
धिनी टीका व रामती-  
र्थविरचित विद्वन्मनो-

कि. ट. ख.

रंजनी टीका या दोन  
टीकांसहित कर्नेल जे.  
ई. जेकब यांर्नी पाठां-  
तरें व इंग्लिश नोद्दस  
देऊन तपासले आहे. ॥१॥ ॥१॥

विक्रमोर्वदी नाटक-का-  
लिदासकृत, रंगना-  
थकृत प्रकाशिका टीके-  
सहित... ... ... ॥१॥ ॥१॥

विदुरनीति, सटीक ... ॥१॥ ॥१॥

श्रीविष्णोर्नामसहस्रम् ॥१॥ ॥१॥

विष्णुसहस्रनाम (सा.) ॥१॥ ॥१॥

,, (रेशमी पुष्टा) ॥१॥ ॥१॥

,, मोद्या अक्षराचें(सा.) ॥१॥ ॥१॥

विष्णुसहस्रनामावलि ... ॥१॥ ॥१॥

,, (रेशमी पु०) ॥१॥ ॥१॥

वृत्तरताकर-केदारभट्ट-  
कृत, नारायणपणिड-  
तकृत टीकेसहित, श्रु-  
तबोध-कालिदास-  
कृत, व छन्दोमञ्जरी-  
गङ्गादासकृत... ... ॥१॥ ॥१॥

वैदिककोश-भट्टभास्कर-  
कृत, निघंडु व चार  
परिशिष्टे यांसुद्दां ... ॥१॥ ॥१॥

वैराग्यशतक-भर्तृहरि-  
कृत, कृष्णशास्त्री म-  
हाबलकृत टीकेसहित ॥१॥ ॥१॥

शब्दरूपावलि (गुंजीक-  
रकृत)... ... ... ॥१॥ ॥१॥

शिवसहस्रनामावलि  
(साधी) ... ... ॥१॥ ॥१॥

,, (रेशमी पुष्टा) ॥१॥ ॥१॥

शिवकवच ... ... ॥१॥ ॥१॥

शुक्रयजुर्वेदीयरुद्राष्टा-  
ध्यायी (स्थूलाक्षर) ॥१॥ ॥१॥

शिवगीता (साधी) ... ॥१॥ ॥१॥

शिवगीता (रेश० पु०) ॥१॥ ॥१॥

किं. ट. ख.		किं. ट. ख.
,, लक्ष्मीनरहरिसूनु-		यीसूत्रपाठ, गणपाठ,
कृत बालानंदिनी		धातुपाठ, लिंगानुशा-
टीका व शंकराचार्य-		सन व शिक्षा आणि
कृत कालभैरवाष्टक		सूत्रानुक्रमणी यांस-
यांसहित ... ...	१ ८८	हित ... ... ... २ १-
शिवतांडवस्तोत्र-दशकं-		सुभाषितरत्भांडागार ३॥ १-
ठकृत, माधवानंदकृत		सूर्यसहस्रनामावलि ... ४॥ १॥
टीकेसहित ... ...	८ ८॥	” (रे. पुष्टा) ... ८॥ १॥
शिवमहशत्त्वोत्र-पुष्पदं-		सौर ... ... ... ९॥ १॥
तकृत ... ... ...	९॥॥ १॥	स्वातुभवाष्टक-गोपीनाथ
शिवापराधक्षमापन-		दाधीचकृत, स्वकृत
स्तोत्र-शंकराचार्यकृत	८॥ १॥	सारबोधिनी टीकेस-
शिशुपालवध काव्य-मा-		हित ... ... ... १ ८॥
घकृत, मलिनाथकृत		स्वामनिरुपण ... ... १. १॥
सर्वेकथा टीकेसहित	३ १-	हर्षचरित-बाणभट्टकृत,
शितलाष्टक ... ...	१ १॥	शंकरकृत संकेतटीके-
शङ्कारशतक-भर्तुहरि-		सहित ... ... ... २ ८८
कृत, कृष्णशास्त्री म-		हितोपदेश-नारायणं-
हाबलकृत टीकेसहित	८॥॥ १॥	दितकृत ... ... ... १॥ ८
सत्यनारायण पूजा व		(हंग्रजी टीपांसहित) १ ८॥
कथा ... ... ...	८ १॥	हिरण्यकेशीय (आपसं-
सारस्तत्व्याकरणपूर्वी		बीय) नित्यविधि ८॥ ८
(कापडी बाइडिंग)	१ ८	नामलिंगानुशासन.
सप्तशती (चंडीपाठ),		(अमरकोश.)
देवीसूक्त व तीन		हे पुस्तक आजपर्यंत बहुतेकांनी स-
रहस्य यांसहित (स्थू-		टीक व मूळ असें छापून प्रसिद्ध केले व
लाक्षर रेशमी पुष्टा)	१. ८॥॥	करीतही आहेत, त्यावरून, केवळ यांचे
सप्तशती (रे. पु. म.अ.)	१ ८	नांव ऐकून लोकांस महत्व वाटणार
,, (साधी कागदी)	८॥ ८	नाहीं, परंतु हे तसें नसून केवळ मूळ
,, (मध्यमाक्षर सुटी प्रत)	८॥ ८	मात्राच आहे खरे, तथापि याच्या प्रति-
,, (सूक्ष्माक्षर रे.पु.)	१. १॥	श्लोकांत येणारीं ज्या ज्या वस्तुंची नांवे
,, (स्थूलाक्षर सुटी		असतील तीं दरपृष्ठांत त्या त्या ओळी-
प्रत) ... ... ...	१॥ ८	च्या बाजूस मराठीत दिलीं आहेत. व
समयोचितपद्यमालिका	१॥ ८	कोणच्या वस्तुंचीं किती हे समजण्या-
समासचक्र ... ...	१॥ १॥	करितां बाजूस अंकही दिला आहे. ल-
सर्वपूजा ... ... ...	८ १॥	वकर ध्यानांत येण्याकरितां विशेषनांवे
सिद्धांतकौमुदी-भटोजी		तेवढीं जाड ठेवून बाकी मजकूर बारीक
दीक्षितकृत, अष्टाच्या-		

टैपांत डेविला आहे व टिकटिकाणी अधिक माहिती देणें ती पृष्ठाच्या शेवटी दिली आहे. ग्रंथाच्या शेवटी संस्कृत मूळपदांचा व बाहेर दाखविलेल्या म-राठी शब्दांचा अकारादिवर्णकमकोश जोडला आहे. त्या योगानें हें पुस्तक आबालवृद्धांला व विशेषत: अन्यासी मुलांला उपयुक्त होईल अशी आज्ञा आहे. हें वे. शा. सं. रा. रा. विनायक नारायण शास्त्री नोंदी यांनी तयार केले आहे. किं. १। रु. ८. रु. ८३ आणे.

### काव्यमाला.

या नांवाचे संस्कृत मासिक पुस्तक, सन १८८६ चे जान्युआरी महिन्यापासून प्रसिद्ध होत आहे. यांत उत्तम उत्तम प्राचीन संस्कृत काव्ये, नाटके, चंपू, भाण, प्रहसने, छंद, अलंकार इत्यादिकांचा यथावकाश संग्रह होत असतो. फार प्राचीन आणि अल्यंत सुरस असेच ग्रंथ निवङ्गन ते या मालेत गुफले जातात. महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद या नांवाचे विद्वान्, बहुश्रुत आणि शोधक गृहस्थ

जयपूरच्या महाराजांचे आश्रयास होते. यांनी काशमीर, पंजाब, बंगाला, रा-जपुताना, मध्यदेश, तैलंगण, वगैरे सर्व प्रदेश फिरुन नानाप्रकारचे काव्यग्रंथ संपादित केले होते. यांतील किंत्येक ग्रंथ तर ८०० किंवद्दुना १००० वर्षांच्याही पूर्वीचे होते. ते सर्व ग्रंथ रा० रा० काशिनाथ पांडुरंग परब यांनी आळांस तपासून दिलेले या मालेत येत जातात; ज्या ग्रंथांच्या टीका उपलब्ध आहेत, ते ग्रंथ सटीक छापले जातात. परंतु टीकारहित ग्रंथांतील दुर्बोध शब्दांवर टिप्पणी देण्यांत येते. शिवाय कवीचे वृत्त, काल व ग्रंथ इत्यादिकांविषयी माहिती जागो-जाग दिली जाते. या मालेचे अंक प्रतिमासास एकदां प्रसिद्ध होतात. प्रत्येक अंकांत डेसी अष्टपत्री सांच्याची १०० पृष्ठे असतात. याची वर्षाची आगाज किमत ६ रुपये, ठ. रु. .॥।. फुटकळ अंकाची किं. .॥॥ ठ. रु. ८

हें मासिक पुस्तक आज नज वर्षे एकसारखे निघत आहे.

हीं पुस्तके मुंबईत काळकादेवीच्या रस्त्यावर “निर्णयसागर” छापखान्यांत रोख पैसे पाठविले असतां अथवा व्याल्युपेण्वलद्वारां विकत मिळतील.

## वेदांतसार.

हे नृसिंहसरस्यतिस्मिकृत सुवोधिनी धीका व अन्तीर्थिपर्वत  
मित्रमन्मते या धीका या दोन ग्रीष्महिन कर्वल जे. ई. जैकब  
योनी पाठतारे व इंग्लिश नोट्स देऊन तपासले आहे. किमत १।।  
रुपया. ट. च. ५०.

## ऋक्संग्रह.

सायणभाष्य व इंग्रजी नोट्समह.

हे युत्कर रा. रा. विष्णु गोविंद विजापुरकर, कोल्हापूर देवील राजा-  
गम कालेजांतील संस्कृताचे अक्षिटग प्रोफेसर यांनी नवार केले आहे. किमत ३  
रुपया. ट. च. १० लाखे.

## श्रीविष्णुशर्मांकहित पञ्चतन्त्रकम्.

किमत १ रुपया. ट. च. ५०।

## समयोचितप्रथमालिका.

किमत १० रुपया. ट. च. ५।

## सौंदर्यलहरी.

(सौंदर्यलहरीनामक समश्योकी दीक्षिति.)

किमत १० लाखे. ट. च. ५० आणा.

